परमार्थ-ग्रन्थमाला का छठा पुष्प

परमार्थ-पत्रावली

[प्रथम भाग]

जयदयाल गोयन्दका

मुद्रक तथा प्रकाशक—

घनश्यामदास जालान,

गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० १९८८ प्रथम बार ५२५०

सं० १९९२ द्वितीय बार २०००

सं० १९९६ तृतीय बार २०००

मूल्य ।)

(चार आना)

प्रकाशकका निवेदन

इस छोटी-सी पुस्तिकामें श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके कुछ पत्रोंके हिन्दी-अनुवादका संग्रह है जो उन्होंने समय-समयपर अपने सम्बन्धियों और मित्रोंको लिखे हैं। आपके प्रत्येक पत्रमें ही कुछ-न-कुछ सीखने योग्य बातें रहती हैं, यदि सब पत्रोंको संग्रह करके प्रकाशित किया जाय तो एक बहुत बड़ा अत्यन्त उपादेय और शिक्षाप्रद ग्रन्थ बन सकता है। परन्तु यह काम विशेष प्रयत्नसाध्य है। आज तो बहुत थोड़े-से चुने हुए पत्रोंका यह संग्रह प्रकाशित किया जाता है, आगे और भी किया जा सकता है। धर्म-प्रेमी जनतासे इससे लाभ उठानेकी प्रार्थना है। इस नवीन संस्करणमें पत्रोंका वर्गीकरण करके उनकी सूची भी छाप दी गयी है।

प्रकाशक

श्रीहरिः

विषय-सूची

पत्र नं० पृष्ठ-संख्या

पत्र नं०	पृष्ठ-संख्या

इन पत्रोंके कुछ चुने हुए विषय

कमल-लोचन श्रीराम

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

परमार्थ-पत्रावली

प्रथम भाग

[१]

आप जगत्‌में क्या कहकर आये थे ? प्रतिज्ञा भङ्ग करना कितना बड़ा पाप है ! धन, यौवन अस्थिर है, केवल भगवत्-प्रेम और भक्ति ही स्थिर है—उन्हें प्राप्त करना चाहिये । मनरूप नटको भगवच्चरणरूपी स्तम्भपर चढ़ाते रहनेसे ही इसकी चञ्चलता मिटती है । इस असार संसारमें केवल राम-नाम ही सार है । संसारकी असारता पुराने खँडहरों और श्मशानोंके देखनेसे प्रत्यक्ष प्रतीत होती है । समुद्रके जलमें नमक, काठमें अग्नि

और दूधमें घी जिस प्रकार रम रहा है उसी प्रकार परमात्मा सबमें रम रहा है। उसीके नित्य ध्यानसे कल्याणकी प्राप्ति होती है। आप मालिकको किस लिये भूल रहे हैं ? स्त्री, पुत्र और धन किस काम आवेंगे ? प्राणोंके निकलनेके समय कोई सहायता नहीं कर सकेगा ! साथ तो शरीर भी नहीं जायगा। जो कुछ किया जाता है वही साथ जाता है। आप उस प्रभुसे मैत्री क्यों नहीं करते ? उसके समान प्रभु तथा प्रेमी और कौन मिलेगा ? ऐसा हितैषी दूसरा कौन है ?

उमा राम सम हितु जगमाहीं। गुरु पितु मातु बन्धु कोउ नाहीं ॥

सब मतलबकी मनवार करनेवाले हैं। फिर आप उस प्रभुसे प्रेम क्यों नहीं करते ? प्रभु तो आपसे कुछ भी नहीं माँगता। केवल उसे हर समय स्मरण रखना चाहिये। उसके नामका जप और ध्यान ही सार है, जप करनेसे ध्यान अपने-आप होने लगता है।

आपके ये सब पदार्थ किस काम आवेंगे ? एक दिन सबको मिट्टीमें मिल जाना है ! जो कुछ ले सकें सो शीघ्र ही ले लेना चाहिये, अमूल्य श्वासोंको व्यर्थ गँवाना उचित नहीं है, फिर आपकी मर्ज़ी !

[२]

अपने स्वार्थके लिये किसीसे सेवा नहीं करवानी चाहिये, स्वार्थ ही पापकी जड़ है । अपने धर्मकी तरफ देखना ही मनुष्यका कर्तव्य है । रुपये-पैसेकी तो बात ही कौन-सी है, चाहे सर्वस्व नाश हो जाय, परन्तु एक प्रभुका भरोसा करके और सबका आश्रय छोड़ देना चाहिये । प्रभुकी जो मर्जी होती है, वही होता है । फिर चिन्ता क्या है ? उनकी प्राप्तिकी लगनमें चाहे सब कुछ चला जाय !

'नारायण' होवे भलै, जो कछु होननहार ।
हरिसों प्रीति लगायके, फिर कहा सोच विचार ॥
लगन लगी मनहीं कहै, लगन कहावै सोय ।
'नारायण' जा लगनमें, तन मन दीजै खोय ॥

प्रभुकी राज़ीसे यदि हमें नरक भोगना पड़े तो उसे भी आनन्दसे भोगना चाहिये । जो कुछ होता है सो प्रभुकी नज़रमें होता है । जब उसकी नज़रसे परे कुछ भी नहीं होता, तब फिर चिन्ता करके उसकी शरणमें दोषी क्यों सिद्ध होना चाहिये ? वह सभी जगह स्वयं सगुण या गुणातीतरूपसे मौजूद है, फिर तुम्हें किस बातकी चिन्ता है ? प्रभुपर पूरा विश्वास रखना चाहिये । जो कुछ हो सो देखता रहे । प्रभु जो कुछ करे उसे ही आनन्दसे स्वीकार करना चाहिये । उसके विधानपर मन मैला करनेसे वह कैसे सन्तुष्ट हो ? केवल उसके नामका जप करता रहे फिर ध्यान आप ही हो जाता है । थोड़े-से शब्दोंमें प्रेम और शरणका भाव लिखा गया है । जब चित्त उदास हो तभी इसे पढ़ना चाहिये ।

[२]

तुमने भगवान्‌में प्रेम होनेका उपाय पूछा सो ठीक है, प्रेम होनेके बहुत-से उपाय हैं, जिनमें कुछ लिखे जाते हैं—

(१) भगवद्भक्तोंद्वारा श्रीभगवान्‌के गुणानुवाद और उनके प्रेम तथा प्रभावकी बातें सुननेसे अति शीघ्र प्रेम हो सकता है। भक्तोंके सगके अभावमें शास्त्रोंका अभ्यास ही सत्सगके समान है।

(२) श्रीपरमात्माके नामका जप निष्कामभावसे और ध्यानसहित निरन्तर करनेके अभ्याससे भगवान्‌में प्रेम हो सकता है।

(३) श्रीपरमात्माके मिलनेकी तीव्र इच्छासे भी प्रेम बढ सकता है।

(४) श्रीपरमात्माके आज्ञानुकूल आचरणसे, उनके मनके अनुसार चलनेसे उनमें प्रेम हो सकता है। शास्त्रकी आज्ञाको भी परमात्माकी आज्ञा समझनी चाहिये।

(५) भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंसे सुनी हुई और शास्त्रोंमें पढ़ी हुई, श्रीपरमात्माके गुण, प्रभाव और प्रेमकी बातें, निष्कामभावसे लोगोंमें कथन करनेसे, भगवान्‌में बहुत महत्त्वका प्रेम हो सकता है।

उपर्युक्त पाँचों साधनोंमेंसे यदि एकका भी भलीभाँति आचरण किया जाय तो प्रेम होना सम्भव है। मान-अपमानको समान समझकर, निष्कामभावसे सबको भगवान्‌का स्वरूप जानकर सबकी सेवा करनी चाहिये। यों करनेसे भगवत्कृपासे आप ही प्रेम हो सकता है। सबमें भगवान्‌का भाव होनेपर किसीपर भी क्रोध नहीं हो सकता। यदि क्रोध होता है तो समझना चाहिये कि अभी वह भाव नहीं हुआ। चित्तमें कभी उद्वेग नहीं होना चाहिये। जो कुछ हो, उसीमें आनन्द मानना चाहिये, क्योंकि सभी कुछ उस प्रभुकी आज्ञासे और उसके मतके अनुकूल ही होता है। यदि प्रभुके अनुकूल होता है तो फिर हमको भी उसकी अनुकूलतामें अनुकूल ही रहना चाहिये। उस परमात्माके प्रतिकूल और उसकी आज्ञा विना कुछ भी होना सम्भव नहीं, इस प्रकार निश्चय करके प्रभुकी प्रसन्नतामें प्रसन्न होकर, सब समय आनन्दमें मग्न रहना चाहिये।

[४]

पहलेसे भगवत्सम्बन्धी साधन कुछ ठीक लिखा सो बड़े आनन्दकी बात है। पत्रमें मेरी प्रशंसा लिखी सो ऐसा नहीं लिखना चाहिये। प्रशंसाके योग्य तो श्रीपरमात्मदेव हैं, उनके रहते अन्य किसीकी बड़ाई करना ठीक नहीं। आपने पूछा कि, भगवान्के भजन-ध्यानके लिये किस तरह चेष्टा करनी चाहिये तथा सब समय परमात्माको याद रखते हुए यथासाध्य शारीरिक निर्वाहका कार्य, निष्कामभावसे कर्तव्य समझकर किस प्रकार किया जा सकता है? सो ठीक है, इस विषयमें विशेषरूपसे तो कभी मिलनेपर कहा जा सकता है। परन्तु साधारणरूपसे नीचे कुछ लिखा जाता है—

(१) किसी भी वस्तुका मूल्य ठहरानेके बाद उस वस्तुको वजनमें, नापमें या संख्यामें न तो कम देना चाहिये और न अधिक लेना चाहिये।

(२) जो वस्तु ग्राहकको दिखलायी जाय वही उसे देनी चाहिये। उसमें किञ्चित् भी दूसरी वस्तु नहीं मिलानी चाहिये।

(३) मुनाफा ठहरानेके बाद न तो कम देना चाहिये और न अधिक लेना चाहिये।

(४) व्यवहारमें बिना हकका पैसा नहीं लेना चाहिये। न तो झूठ-कपट या जबरदस्तीसे लेना चाहिये और न बिना हक किसीसे माँगकर ही छूट करानी चाहिये।

(५) निषिद्ध वस्तुका व्यवहार नहीं करना चाहिये। विशेष पाप या जीवहिंसा होती हो, ऐसी वस्तुका व्यवहार भी नहीं करना चाहिये।

(६) अपने मनसे पूछकर जिसमें पाप हो, उस कामको नहीं करना चाहिये। व्यवहारके उपर्युक्त दोष पापोंके भयसे, मृत्युके भयसे, परलोकमें दण्डके भयसे या ईश्वर-मिलनमें विलम्ब होनेके भयसे भी कम हो सकते हैं। परन्तु लोभ छोड़े बिना इनका सर्वथा छूटना सम्भव नहीं। श्रीभगवान्‌में कुछ प्रेम उत्पन्न होनेपर, उनके प्रभावको कुछ जान लेनेसे लोभ तुरन्त छूट सकता है। इसलिये सबसे पहले वही उपाय करना चाहिये कि जिससे श्रीभगवान्‌में प्रेम हो। इसके उपाय ...... के पत्रमें लिखे हैं।* उपर्युक्त शुद्ध व्यवहारके उपाय तो पापोंसे बचनेके लिये लिखे गये हैं परन्तु कुछ बातें इनसे भी बढ़कर हैं और वे निम्नलिखित हैं—

* प्रेमकी प्राप्तिके कुछ साधन तीसरे पत्रमें लिखे गये हैं, उन्हें देखना चाहिये।—सम्पादक

लोभ-त्यागपूर्वक केवल धर्मकी भावनासे, भगवान्‌को ही सब कुछ जानकर और उन्हींकी आज्ञा मानकर, जो व्यावहारिक कर्म किये जाते हैं, उनसे संसारके लोगोंको बहुत लाभ होता है। जिनके व्यवहारमें अपने लिये केवल शरीर-निर्वाहमात्रका ही भाव रहता है। वह भी चाहे न हो। और जिनको लाभ-हानिमें हर्ष-शोक नहीं होता, ऐसे पुरुषोंका व्यवहार केवल लोक-हितके लिये ही हुआ करता है, धनके लिये नहीं, इसीका नाम निष्काम व्यवहार है। इससे हृदयकी बड़ी शुद्धि होती है।

घरके तथा संसारके समस्त मनुष्योंके साथ स्वार्थ छोड़कर उनका हित चिन्तन करते हुए जो बर्ताव किया जाता है, वही बर्ताव उत्तम है और उसीसे हृदयकी शुद्धि होती है। भजन सत्सङ्गका भी यथासाध्य साधन इसमें हो सकता है।

ध्यानका अभ्यास करनेसे ध्यान भी होना सम्भव है। चेष्टा रखकर अभ्यास करनेसे सभी कुछ हो सकता है। सत्सङ्ग और जपका अधिक अभ्यास हो जानेपर ध्यान निरन्तर हो सकता है। काम करते हुए श्वासद्वारा नामका जप और मनके द्वारा भगवत् स्वरूपका ध्यान करनेकी चेष्टा करनेसे, एकान्तमें भी बहुत लाभ होता है। सत्सङ्ग कम हो तो भगवद्भक्तिके ग्रन्थ पढ़ने चाहिये। यह भी सत्सङ्ग ही है।

[५]

[इस पत्रमें प्रश्नोत्तर हैं, प्रश्नकर्ताके प्रश्न लिखकर उनका उत्तर दिया गया है ।—सम्पादक]

प्र०—सारे संसारमें जीव बहुत ही दुखी हो रहे हैं । किसी भी देशमें शान्ति नहीं; देश-देशमें, घर-घरमें कलह हो रही है, जगह-जगह लोग एक दूसरेका अनिष्ट कर रहे हैं; इस स्थितिसे जीवोंका उद्धार होना चाहिये ।

उ०—ठीक ही है, उद्धार तो होना ही चाहिये, इसके उपाय तुम्हारे दूसरे प्रश्नोंके उत्तरमें आगे लिखे जायँगे ।

प्र०—इस समय जगत् मानो दुःख-दावानलसे दग्ध-सा हो रहा है । इस प्रकारकी स्थिति रही तो शायद कुछ दिनों बाद घर-घरमें, भाई-भाईमें परस्पर भयानक मार-काट होनी सम्भव है, लोगोंमें भगवान्‌के प्रति विश्वास उठता चला जा रहा है । दिन-

पर-दिन जगत्का भविष्य कम-से-कम एक बार तो बहुत ही भयानक रूप धारण करता चला जाता है, इसका क्या कारण है?

उ०—यह बात कई अंशोंमें ठीक है परन्तु ऐसा होनेका कारण भक्तिपूर्वक भगवत्सम्बन्धी आलोचनाका अभाव है, प्रायः सारा जगत् केवल भौतिक सुखको ही परम साध्य मानकर उसीकी ओर दौड़ रहा है, इस समय जगत्की दृष्टि प्रायः सांसारिक विषयोंकी ओर ही लगी हुई है। भोगयोग्य वस्तुओंके सञ्चयको ही प्रायः लोगोंने परम पुरुषार्थ-सा मान रक्खा है। इसीसे सब प्रकारकी बुराइयाँ प्रकट हो रही हैं, जैसे रुपयोंके लोभसे व्यवहार बिगड़ जाता है उसी प्रकार विषय-लालसासे सारे धर्माचरण बिगड़ जाते हैं। यदि ऐसी ही स्थिति बनी रही तो सम्भव भी है कि शायद कलह और बढ़े! कारण, भौतिक सुखकी प्रबल आकांक्षा मनुष्यको पशुकी संज्ञामें परिणत कर देती है। सभी भोगोंकी ओर दौड़ते हैं, जहाँ भोगपदार्थ होते हैं वहीं एक साथ झपटते हैं। जैसे किसी कुत्तेके मुँहमें रोटी हो या कोई पक्षी मासका टुकड़ा लिये हुए हो तो प्रायः बहुत-से कुत्ते और पक्षी उनके पीछे पड़ जाते हैं और उनका परस्परमें बड़ा द्वन्द्वयुद्ध होता है, जड़वादको आदर्श मान लेनेका परिणाम भी प्रायः इसी प्रकार हुआ करता है। इसलिये ऐसे आराम, मौज-शौक आदि विलासिता सहित संसारकी सारी भोगासक्तिका मनके द्वारा त्याग करना चाहिये। ऐसा होनेसे ही सुख सम्भव है।

प्र०—जीव इस स्थितिमें कबतक पड़े रहेंगे यानी इनका उद्धार कब होगा ?

उ०—इस बातका उत्तर नहीं दिया जा सकता। योगी चाहें तो कुछ मालूम कर सकते हैं। पुरुषार्थ अनियत है, इस बातका निर्णय नहीं हो सकता कि पुरुषार्थका फल कब कैसा होगा, किसके साधनका फल कब और कैसा होगा। इसका पता केवल भगवान्‌को ही है। इस सम्बन्धमें मनुष्यके द्वारा निश्चितरूपसे कुछ भी नहीं कहा जा सकता। यह बात यदि पूर्वनिश्चित मान ली जाय कि अमुक जीव अमुक समय परमपदको प्राप्त होगा तो साधनसे श्रद्धा हट जाती है। लोग कह सकते हैं कि उद्धारका समय पूर्व-निश्चित है ही तो फिर साधनकी क्या आवश्यकता है। यदि यह माना जाय कि परमात्मा भी इस भविष्यको नहीं जानते तो उनकी त्रिकालज्ञतामें बाधा आती है। इसलिये यही कहा जा सकता है कि 'इस बातको भगवान् ही जानें।' परन्तु इस बुरी दशासे उद्धार पानेके लिये कुछ उपाय हैं। यदि हिन्दू-जातिकी दृष्टिसे कहा जाय तो इस जातिके कष्ट दूर करनेके लिये ये चार उपाय काममें लाये जा सकते हैं—

१—धार्मिक शिक्षाका प्रचार।

२—त्यागी, अनुभवी और विद्वान् सज्जनोंद्वारा देशभरमें शुद्ध धार्मिक भावोंका प्रचार।

३—अल्प मूल्यमें धार्मिक ग्रन्थोंका प्रचार।

४-अनाथ बालकोंकी धर्म रक्षाके लिये अनाथालयोंकी स्थापना।

इस प्रकार किया जाय तो इस जातिमें नीति, त्याग, भक्ति और धर्माचरणका विकास और प्रसार हो सकता है और इनके प्रसारसे सम्भवत यह जाति दु:ख-दावानलमे दग्ध होनेसे बच सकती है।

यदि सारे जगत्की दृष्टिसे कहा जाय तो भी प्रायः ऐसी ही बात है। समष्टिके उद्धारार्थ भी त्याग, विद्या, भक्ति और सदाचारके विस्तारकी ही विशेष आवश्यकता है। और यह कार्य स्वार्थत्यागी, सेवापरायण सत्पुरुषोंकी तत्परतासे ही हो सकता है। निष्काम सेवा ही एक ऐसी विद्या है कि जिससे ससार जीता जा सकता है। जबतक ऐसे परहितव्रती, स्वार्थ-त्यागी पुरुषोंद्वारा जगत्मे उपर्युक्त भावोंका प्रचार न हो, तब-तक जगत्के दु खोंका नाश होना कठिन ही है। ऐसे पुरुष जगत्में बहुत थोड़े हैं इसी कारणसे जगत् दुखी है। सम्भव हो तो ऐसे निःस्वार्थी पुरुष तैयार करने चाहिये, यह काम महापुरुष कर सकते है। श्रीगीताजी अध्याय १२ के श्लोक ३, ४,*

---

* ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्त पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्य च कूटस्थमचल ध्रुवम्॥
सनियम्येन्द्रियग्राम, सर्वत्र समबुद्धय।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रता॥

१३, १४* के अनुसार स्वाभाविक ही सर्वभूतोंके हितमें रत, सर्वभूतोंमें अद्वेष्टा, मैत्री और करुणादि गुणोंसे सम्पन्न पुरुष यदि चाहें तो जगत्‌के जितने भागमें वे परिश्रम करें, उतने भागमें जीवोंका दुःख बहुत अंशमें दूर कर सकते हैं।

प्र०-जीवोंकी इस दशापर परमात्माकी करुणा तो है ही परन्तु अब तो करुणाके सागरकी मर्यादा भी टूट जानी चाहिये।

उ०-इस प्रश्नका अर्थ शायद यह होगा कि भगवान्‌को अवतार लेकर जीवोंका उद्धार करना चाहिये, करुणासे ऐसा कहा जा सकता है परन्तु वास्तवमें ऐसा समय अभी आया है या नहीं इस बातको भगवान् ही जानें। अनुमानसे ऐसा कहा जा सकता है कि सम्भवतः भगवान्‌के लिये स्वयं अवतीर्ण होनेका समय अभीतक नहीं आया। आया होता तो वे अबतक अवतार ले लेते। जीवोंकी दशा तो उनसे छिपी है ही नहीं। परन्तु मालूम होता है कि वैसा समय ही अभीतक नहीं आया है। कलियुगमें जिस प्रकारकी स्थिति होनी चाहिये, उससे भी अधिक बुरी स्थिति हो जाय तब भगवान् अवतार ले सकते हैं। परन्तु ऐसी दशा अभीतक हुई नहीं जान पड़ती। मनुष्य अबतक प्रायः

---

* अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥

अपनी मौतसे ही मरते है। पेट भरनेको अन्न मिलता ही है। बलात्कारसे प्राय प्राणहरण नहीं होते। इस प्रकारका सङ्कट या तो पशु-पक्षियोंपर है जो किसी न किसी अंशमें प्राय: सदासे था। या भारतवर्षमें ऐसा सङ्कट गोजातिपर है जो बलात्कारसे मारी जाती है, विशेषकर दूध देनेवाली जवान गौएँ, जो विना ही मौत मारी जाती है! तुम्हें जो संसारकी वर्तमान दशा इतनी असहनीय प्रतीत होती है, यह तुम्हारी कमज़ोरी या करुणाका परिणाम है। परन्तु यदि अनवरत गतिसे ऐसी ही अन्धाधुन्धी चलती रही तो सम्भव है कि भगवान्के अवतीर्ण होनेका समय भी आ जाय या उनके अधिकारप्राप्त कोई कारक पुरुष आ जायँ अथवा भगवान्की कृपासे भक्त महात्माओंको ऐसा अधिकार प्राप्त हो जाय कि जिससे वे लोग ही इस कामको चला लें, जैसे सम्राट् यदि यहींके किसी सज्जनको बड़े लाट (वायसराय) का अधिकार सौंप दें तो वह सब काम चला सकता है।

प्र०-श्रीपरमात्माकी नित्य कृपाका अनुभव जीवोंको सरलतासे होने लगे तो जीव परमात्माकी कृपा लाभकर कृतार्थ हो सकते हैं?

उ०-ठीक है, जीव चाहें तो ऐसा हो सकता है।

प्र०-न मालूम मायाकी कितनी प्रबल शक्ति है कि परमात्माकी असीम कृपाका पद पदपर प्रत्यक्ष दर्शन करता हुआ भी मोहावृत जीव बार बार भूल जाता है।

उ०—ठीक है, परन्तु भगवान्‌की प्रबल शक्तिके सामने माया-की कुछ भी शक्ति नहीं है। जो मायाके वशमें हैं, उन्हींके लिये माया प्रबल है। परमात्माको और परमात्माके प्रभावको जानने-वालोंके सामने मायाकी शक्ति कुछ भी नहीं है। क्योंकि वास्तवमें मायाकी ऐसी शक्ति है ही नहीं। मायाके वशमें पड़े हुए जीवोंने ही उसकी ऐसी शक्ति मान रक्खी है। जैसे तन्द्राकी अवस्थामें पड़ा हुआ मनुष्य, छातीपर हाथ पड़ जानेसे, चोरकी कल्पना कर अपनी छातीपर बड़ा भारी बोझ-सा समझ लेता है और अपनेको इतना दबा हुआ मानता है कि उसे जबान हिलानेमें भी भय-सा मालूम होता है परन्तु वास्तवमें यहाँ न चोर है और न उसका बोझ है। यही दशा मायाकी है। जीव जहाँतक चेत नहीं करता, वहाँतक मायाकी प्रबल शक्ति मानकर वह उससे दबा रहता है। यदि चेतकर परमात्माकी शरण ले ले और उसका स्वरूप जान ले तो फिर मायाकी शक्ति कुछ भी न रहे। (* गीता ७। १४ एवं १३। २५ में देखना चाहिये।) जीव जो परमात्माका सनातन अंश है, अपनी

---

* दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

'क्योंकि यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी योगमाया बड़ी दुस्तर है, परन्तु जो पुरुष मेरेको ही निरन्तर भजते हैं, वे इस मायाको उल्लंघन कर जाते हैं, अर्थात् संसारसे तर जाते हैं।'

शक्तिको भूल रहा है, इसीलिये उसको माया प्रबल प्रतीत होती है। यदि अपनी शक्ति जागृत कर ली जाय तो मायाकी शक्ति सहजहीमें परास्त हो जाय। मायामें अज्ञान हेतु है और अज्ञानके नाशसे ही मायाका नाश है।

प्र०—जिस समय वह (परमात्मा) किसी रूपमें अपना रूप दिखलाता है उस समय तो कुछ आनन्द सा होता है पर उस आनन्दमें उस आनन्दरूपको न पहचानकर जीव उसे छोड़ देता है, फिर पश्चात्ताप होता है। मालूम नहीं, वह पश्चात्ताप असली है या बनावटी। असली होता तो क्यों नहीं पकड़ लेता?

उ०—ठीक ही है। पश्चात्ताप असली होता तो छोड़ता ही क्यों?

प्र०—ऐसी स्थितिमें जीवका मोह नाश कैसे हो?

उ०—संसारासक्ति ही इस मोहका कारण है, उसका नाश वैराग्यसे हो सकता है, वैराग्यमें पूर्वसञ्चित पाप बाधा देते हैं परन्तु परमात्माकी शरणसे उनका भी नाश हो सकता है।

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥

'परन्तु इनसे दूसरे अर्थात् जो मन्द बुद्धिवाले पुरुष हैं वे (स्वयं) इस प्रकार न जानते हुए, दूसरोंसे अर्थात् तत्त्वके जाननेवाले पुरुषोंसे सुनकर ही उपासना करते हैं, और वे सुननेके परायण हुए पुरुष भी मृत्युरूप संसारसागरको निःसन्देह तर जाते हैं।'

प्र०–किस उपायसे जीवके अन्तरमें तत्काल बिजली-सी दौड़ जाय, वह चैतन्य हो जाय और उस चेतनाको पाते ही अपने प्रियतमको पकड़ ले। किसी तरह छोड़े ही नहीं। किसी भी भुलावेमें न भूले, ऐसा कोई सरल उपाय सारे जीवोंके कल्याण-के लिये बतलाना चाहिये और उस उपायको जगत्‌में पुकारके (हेला मारकर) कह देना चाहिये कि जिससे सारे जीव मोहकी प्रहेलिकाको तोड़कर अपने प्रियतमको पकड़ पावें।

उ०–ठीक है, जप और सत्संगसे परमात्माके प्रभावको जानकर, शरीर और संसारको अनित्य समझकर, परमात्माके ध्यानमें स्थित होनेसे यह कार्य हो सकता है। यही हेला मारकर कहना है।

प्र०–जबर्दस्ती खेंचकर पावन करनेका मौका है, तभी तो पतितपावन नामकी सार्थकता है।

उ०–पतितपावन तो भले कोई उनको न कहे, यह तो कहने-वालेकी मर्ज़ीकी बात है! वे (परमात्मा) तो अपने कानूनके अनुसार ही सब कुछ करते हैं, परमात्माको पतितपावन, दीन-बन्धु और दीनदयालु आदि नामोंसे पुकारकर उनसे प्रार्थना करना उत्तम है. इसमें कोई दोष नहीं है, इसमें भी प्रेम और करुणाका भाव है परन्तु इससे भी उत्तम यह है कि उससे कुछ भी नहीं कहे। किसी प्रकारकी खुशामद न करे, उनकी गरज हो तो आवें नहीं तो उनकी मर्ज़ी!

[६]

आपने लिखा कि, 'हमपर फौजदारी मामला लगा हुआ था वह खारिज हो गया है' सो आनन्दकी बात है। आपने लिखा कि, 'अब हमपर कोई भी मामला नहीं रहा' सो बहुत ही आनन्दकी बात है। परन्तु यमराजके घरका एक मुकद्दमा सबपर लगा हुआ है, उसे खारिज करवाना चाहिये, नहीं तो बड़ी कठिनाई है। उस मुकद्दमेके लिये आपने जितनी चेष्टा की, उतनी ही यदि इस मुकद्दमेके लिये भी करें तो बहुत लाभ हो सकता है। आप लिखते हैं कि हमपर अब कोई भी मुकद्दमा नहीं रहा, इससे मालूम होता है कि इस मुकद्दमेको तो कोई मानता ही नहीं, वास्तवमें यही तो मृत्युरूपी भयानक वारण्टका मुकद्दमा है कि जिसको कोई भी नहीं टाल सकता। केवल वह टाल सकता है जिसने भगवान्‌की शरण ग्रहण कर ली है। अतएव सबको भगवान्‌की शरण लेनी चाहिये। भगवान्‌के जो भक्त हैं वे तो

सच्चे वकील हैं और वेद-शास्त्रादि ग्रन्थ कानूनकी पुस्तकें हैं; अतएव ऐसे वकीलोंसे मिलना चाहिये और कानूनकी पुस्तकोंको देखनेके लिये भी समय निकालना चाहिये।

इस प्रकार चेतावनी मिलनेपर भी यदि आपको चेत नहीं होगा तो फिर कब होगा? इस तरहका अवसर हर समय मिलना बहुत कठिन है। आपने लिखा कि 'बीमारीके कारण मेरा शरीर ढीला रहता है' सो आपको इलाज करवाना चाहिये। बीमारी बहुत ही बुरी चीज़ है, अतएव इलाजकी चेष्टा अवश्य करनी चाहिये। साथ-साथ उस बीमारीको दूर करनेके लिये भी यत्न करना चाहिये कि जिससे अबतक जन्म-मरण होता चला आता है और भविष्यमें भी होना सम्भव है। उपाय किये बिना उस बीमारीका मिटना कठिन है। शरीरकी बीमारी तो पापोंका भोग समाप्त होनेपर आप-से-आप भी मिट सकती है परन्तु भवसागर-में जन्म-मृत्युके रूपमें भटकानेवाली बीमारी आप-से-आप नहीं मिटती, उसका इलाज करवानेकी बड़ी आवश्यकता है। निष्काम-भावसे निरन्तर श्रीपरमात्माका भजन-ध्यान करना, भवरोग-की उत्तम औषध है। भगवान्‌के भक्त निपुण वैद्य हैं, वेदशास्त्र और भक्तिसम्बन्धी ग्रन्थ ही वैद्यकशास्त्र हैं, उत्तम कर्म तथा उत्तम आचरण सुपथ्य है और पापाचरण ही कुपथ्य है। इस प्रकार समझकर इस बीमारीके नाश करनेके लिये चेष्टा करनी चाहिये। इसके लिये जो चेष्टा की जाती है सो कभी व्यर्थ नहीं

जाती। भगवन्नाम-जप और ध्यानरूपी औषध कभी निष्फल नहीं होती। शारीरिक रोगोंकी दवा व्यर्थ भी हो सकती है और उनका मूल्य भी देना पड़ता है। वैद्य भी प्राय लोभी मिलते हैं और चेष्टा भी यों ही चली जाती है परन्तु भगवान् श्रीसच्चिदानन्दके भजन-ध्यानकी चेष्टा कभी व्यर्थ नहीं जा सकती। खेद है कि लोग इस बातपर विश्वास नहीं करते! भाईजी! यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि तप्त कुण्डमें पड़े हुए मनुष्यकी तरह लोग निरन्तर चिन्तारूपी अग्निमें जल रहे हैं परन्तु इस दुःखको दूर करनेकी चेष्टा नहीं करते, इससे बढ़कर मूर्खता और क्या हो सकती है?

आपने 'दूकानका काम जल्दी सलटानेकी चेष्टा लिखी' सो ठीक है। यह ससारके झंझट बहुत बुरे हैं इसलिये इनका निपटाना ही ठीक है, कोई काम भी पीछे रखकर नहीं जाना चाहिये। संसारके किसी काममें चित्त लटकता रह जानेसे फिरसे जन्म लेना पड़ता है, यों समझकर काम जल्दी ही निपटा लेना चाहिये कि जिससे फिर सदाके लिये आनन्द हो जाय। भाईजी! जैसे रेलके स्टेशनपर टिकट लेकर मनुष्य गाड़ीमें बैठनेके लिये तैयार रहता है, उसी प्रकार सब काम निपटाकर तैयार रहना चाहिये, फिर कोई चिन्ताकी बात नहीं!

[७]

आपने व्यवहारके सम्बन्धमें जो कुछ पूछा उसका उत्तर निम्नलिखित है—

(१) भगवान्‌के भजन और सत्सङ्गमें पिता, पुत्र, स्त्री, कुटुम्ब, शरीर और धनादिका बन्धन समझना भूल है। बन्धन तो अपने मनकी दुर्बलता है। मन ही बन्धनका हेतु है। यदि वैराग्य हो तो घरमें रहनेसे भी कोई हानि नहीं और वैराग्य न होनेपर घर छोड़ देनेसे भी कोई लाभ नहीं। यदि भजन और ध्यानका साधन तेज होता रहे और रहना घरहीमें हो तो क्या आपत्ति है? वैराग्ययुक्त भजन-ध्यानका साधन न हो तो जगह-जगह भटकनेमें भी कोई लाभ नहीं!

सत्सङ्गमें श्रद्धा हो तो थोड़े-से संगसे ही भगवत्-प्राप्ति हो सकती है। सत्सङ्गकी उत्कण्ठा होनेपर यदि किसी न्याययुक्त कारणसे सत्सङ्गमें उपस्थिति न भी हो तो उसे घर बैठे ही उत्तम उपदेश और साधु-संगकी प्राप्ति हो सकती है।

भगवत्-प्राप्तिके लिये यदि सत्सङ्गकी विशेष उत्कण्ठा हो जाय तो सम्भव है कि स्वयं भगवान् साधुके वेषमें उसके समीप आ जायँ, अतएव भजन-ध्यान और सत्सङ्गकी विशेष उत्कण्ठा रखनी चाहिये। भजन-ध्यान और सत्सङ्गके प्रतापसे मल, विक्षेप और आवरणके क्षीण होनेपर, साधकका भगवान्‌में प्रेम

होता है और उसके बाद संसारसे वैराग्य उत्पन्न होता है। ऐसी अवस्था हो जानेपर उसे संसारका कोई भी काम भारी नहीं प्रतीत होता और न किसी कार्यके करनेमें उसे झझट ही मालूम होता है, उसके द्वारा निष्कामभावसे सारे काम खेलकी तरह हुआ करते हैं। ऐसा पुरुष वनमें रहे या घरमें, उसके लिये दोनों ही समान है।

(२) आपको क्या करना चाहिये इस सम्बन्धमें मेरी सम्मति यह है।

क-चार या छः घंटे निष्काम कर्मयोगके अनुसार परमात्माको स्मरण रखते हुए दूकान-सम्बन्धी काम करनेका अभ्यास करना चाहिये। यदि सहसा इस प्रकार न हो सके तो कम-से-कम आपकी दूकानके कामसे जनताका अधिक हित होता रहे, तब भी कोई आपत्तिकी बात नहीं। अपना लक्ष्य कर्तव्य-की ओर रहना चाहिये, लोभकी ओर नहीं। इस प्रकारके व्यवहारका परिणाम अच्छा ही होनेकी आशा की जा सकती है।

ख-छः घंटे सत्सङ्ग या शास्त्रोंके द्वारा प्राप्त किये हुए उपदेशोंके अनुसार, एकान्त स्थानमें निष्कामभावसे जपसहित ध्यानका निरन्तर साधन करना चाहिये।

ग-अनुमान छः घंटे ध्यानस्थ होकर सोना चाहिये।

घ-अवशेष समयमें आप इच्छानुसार कार्य कर सकते हैं परन्तु प्रत्येक चेष्टा नामके जप और स्वरूपके ध्यानसहित

होनी चाहिये ! जप और ध्यान दोनों न हों तो परमात्माके नामका स्मरण तो मन, श्वास या वाणीसे अवश्य ही करते रहना चाहिये ।

(३) 'काम न करनेमें लोक-लज्जाकी बात लिखी', सो वह भी एक प्रकारसे ठीक है परन्तु विशेष हानि तो कर्तव्यके त्यागसे होती है । श्रीभगवान्‌ने श्रीगीता अध्याय २ के ४७ वें* श्लोकमें यही भाव दिखलाया है कि कर्मका त्याग भी नहीं करना चाहिये । कारण, कर्तव्यका त्याग बड़ा ही लोक-हानिकर है ।

(४) आपने लिखा कि 'निर्वाहकी चिन्ताके लिये काम करनेका कोई हेतु नहीं है' सो बहुत ही उत्तम बात है, परन्तु स्वार्थरहित कर्म करते समय यदि मन धोखा न देता हो तो भजन छूटनेका क्या हेतु है ? यदि अभ्यासकी त्रुटिसे ऐसा होता हो तो अभ्यास करके उस त्रुटिको मिटा देना चाहिये ।

(५) शोक-सम्बन्धी बातचीतसे और पत्रोंके आने-जानेसे हृदयमें उद्वेगका होना अन्तःकरणकी निर्बलता या आत्मबलकी कमीका परिणाम है । बर्तावमें शोकका कुछ व्यवहार तो अवश्य ही होना चाहिये, परन्तु अन्तःकरणमें उद्वेग होना उचित नहीं ।

---

* कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥

'तेरा कर्म करनेमात्रमें ही अधिकार होवे, फलमें कभी नहीं और तू कर्मोंके फलकी वासनावाला भी मत हो तथा तेरी कर्म न करनेमें भी प्रीति न होवे ।'

(६) भगवत्के स्वरूपमें स्थित रहते हुए जो कुछ भी हो, सबको भगवान्की लीलामात्र समझकर निर्विकार और स्थितधी रहनेका अभ्यास करना चाहिये। समयको अमूल्य समझना चाहिये, समयकी अमूल्यताका रहस्य समझनेके बाद और कुछ भी समझना बाकी नहीं रह जाता।

(७) शरीरसे पृथक् रहकर और शरीरके कर्मोंका साक्षी बनकर जो कर्म करता है, उसके हृदयमें विकार नहीं हो सकता। यदि विकार हो तो उसकी स्थिति शरीरमें समझनी चाहिये। इस विषयमें श्रीगीताजी अध्याय १४ के १९ वें* श्लोकमें जो कुछ कहा गया है उसका रहस्य श्री   से पूछना चाहिये। श्रीनारायणके स्वरूपका ध्यान आपको 'जैसा प्रिय हो' वैसा ही नाम-जपके साथ करते हुए आनन्दमें मग्न रहना चाहिये। आनन्द न हो तो बिना हुए ही आनन्दकी भावना करनी चाहिये। एक दिन सच्चा आनन्द भी प्राप्त हो सकता है।

---

* नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति॥

'जिस कालमें द्रष्टा, अर्थात् समष्टिचेतनमें एकीभावसे स्थित हुआ साक्षी पुरुष तीनों गुणोंके सिवा अन्य किसीको कर्ता नहीं देखता है अर्थात् गुण ही गुणोंमें वर्तते हैं, ऐसा देखता है और तीनों गुणोंसे अति परे सच्चिदानन्दघनस्वरूप मुझ परमात्माको तत्त्वसे जानता है, उस कालमें वह पुरुष मेरे स्वरूपको प्राप्त होता है।'

(८) सारे संसारको एक आनन्दघनमें कल्पित समझकर सबको आनन्दसे परिपूर्ण समझना चाहिये। जिस प्रकार जलमें स्थित बर्फका पिण्ड केवल जलसे पूर्ण है, उसी प्रकार सबको आनन्दघन परमात्मामें और परमात्मासे परिपूर्ण समझना चाहिये।

(९) किसी प्रकारसे भी ऐसा ज्ञान होना चाहिये कि शरीर मिथ्या और नाशवान् है एवं अपने साथ इसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। जो कुछ भी हो, अन्तःकरणमें किञ्चित् भी विकार नहीं होना चाहिये। सब समय बेपरवाह रहना चाहिये। प्रत्येक समय श्रीगीता अध्याय २ के ७१ वें* श्लोकके अनुसार भाव रखना चाहिये। किसी समय चाहे कैसा भी शोक हो, श्रीगीता अध्याय २ के ११ वें† श्लोकका अर्थ समझना चाहिये; इसके समझमें आ जानेपर शोक और चिन्ताका रहना सम्भव नहीं।

---

* विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥

जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको त्यागकर, ममतारहित और अहङ्काररहित, स्पृहारहित हुआ बर्तता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है।

† अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥

तू न शोक करनेयोग्योंके लिये शोक करता है और पण्डितोंकेसे वचनोंको कहता है, परन्तु पण्डितजन जिनके प्राण चले गये हैं उनके लिये और जिनके प्राण नहीं गये हैं उनके लिये भी नहीं शोक करते हैं।

[८]

उत्तम आचरणोंके लिये आपको विशेष चेष्टा करनी चाहिये। सत्सङ्गसे ही उत्तम आचरणोंका होना सम्भव है। अतएव भजन ध्यान और सत्सङ्गके लिये विशेष प्रयत्न करना चाहिये। संसारके तुच्छ भोगोंकी ओर भूलकर भी मन न लगाना चाहिये। संसारके भोगोंमें जो समय जाता है सो व्यर्थ जाता है। इस बातको समझकर उस सच्चे प्रेमी परमात्माके भजन ध्यानकी ही शरण लेनी चाहिये। समय बहुत थोड़ा है, बहुत विचार विचारकर इसे बिताना चाहिये। एक पलके साधनकी भी त्रुटि रह जायगी तो पुनः जन्म लेना पड़ेगा। अतएव ऐसी ही चेष्टा करनी चाहिये कि जिसमें शीघ्र ही भगवत्‌की प्राप्ति हो जाय।

---

[९]

[इस पत्रमें भी प्रश्नकर्ताके प्रश्न लिखकर उनका उत्तर दिया गया है—सम्पादक]

प्र०—निरन्तर स्वरूपकी स्थिति रहनेपर शरीर और अन्तःकरणसे दूसरा काम हो सकता है या नहीं? यदि हो सकता है तो उस कालमें उतने कालके लिये क्या स्वरूपकी विस्मृति होती है? यदि स्वरूपकी विस्मृति नहीं होती और दूसरा काम भी भलीभाँति होता है तो वह किस प्रकार होता है?

उ०—निरन्तर भगवत्-स्वरूपमें (व्यष्टि-चेतनका समष्टि-चेतनमें एकीभावसे) स्थित रहते हुए भी अन्तःकरण और इन्द्रियों-द्वारा कर्तव्य-कार्य होनेमें कोई बाधा नहीं पड़ती। उस कालमें भगवत्-स्वरूपमें स्थित पुरुषकी स्थितिमें किञ्चित् भी अन्तर आनेका कोई हेतु नहीं है, क्योंकि परमात्माको प्राप्त हुए पुरुषका वास्तवमें अन्तःकरणसे कोई सम्बन्ध नहीं रहता। केवल लोक-दृष्टिमें उसके अन्तःकरण और इन्द्रियोंद्वारा सब कार्य होते हुए

प्रतीत होते हैं सो सब समष्टि-चेतनकी सत्तासे बिना कर्तृत्वाभिमानके पूर्व अभ्यासानुसार हुआ करते हैं। भगवानने गीतामें कहा है—

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।

ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः॥ (४।१९)

जिसके सम्पूर्ण कार्य कामना और संकल्पसे रहित हैं, ऐसे उस ज्ञानरूप अग्निद्वारा भस्म हुए कर्मोंवाले पुरुषको ज्ञानी जन भी पण्डित कहते हैं।

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी।

नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन्॥ (५।१३)

वशमें है अन्तःकरण जिसके ऐसा सांख्ययोगका आचरण करनेवाला पुरुष तो निःसन्देह न करता हुआ और न करवाता हुआ नवद्वारोंवाले शरीररूप घरमें सब कर्मोंको मनसे त्यागकर, अर्थात् इन्द्रियाँ इन्द्रियोंके अर्थोंमें वर्तती हैं ऐसे मानता हुआ, आनन्दपूर्वक सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें स्थित रहता है।

प्र०—परमात्माकी प्राप्तिके बाद उस पुरुषको काम-क्रोधादि होते हैं या नहीं? यदि नहीं होते तो महर्षि लोमशने काकभुशुण्डिको शाप क्योंकर दिया और भगवान् शङ्कर कामसे पीडित होकर मोहिनीके पीछे कैसे दौड़े? इस प्रकारके और भी उदाहरण मिलते हैं, इनका क्या उत्तर है? लोगोंका कहना है

कि काम-क्रोधके रहनेमात्रसे ही स्वरूपकी स्थितिमें कोई बाधा नहीं पड़ सकती ।

उ०-परमात्माकी प्राप्तिके पश्चात् अहंकाररहित शुद्ध अन्तःकरणमें काम-क्रोधादि दुर्गुणोंके उत्पन्न होनेका कोई हेतु नहीं रह जाता । महर्षि लोमशको यदि वास्तवमें क्रोध न हुआ हो और केवल शास्त्रानुसार किसीकी भलाईके लिये वैसा बर्ताव या भाव किया गया हो, तब तो कोई आपत्ति नहीं है; परन्तु यथार्थमें उन्हें क्रोध हुआ हो ऐसा माना जाय तो समझना चाहिये कि तबतक उनको परमात्माकी प्राप्ति नहीं हुई । इस विषय-को लेकर ही श्रीभुशुण्डिजीने कहा है 'क्रोध कि द्वैत बुद्धि बिनु······।'

श्रीशंकर भगवान्के सम्बन्धमें कुछ कहा नहीं जा सकता । भगवान् विष्णु और शिव साक्षात् ईश्वर हैं । उनके कर्मोंका मर्म समझना मनुष्यकी बुद्धिके बाहर है । ईश्वरकी लीलाको समझने-की शक्ति मनुष्यमें नहीं है । लोगोंका जो कथन है कि काम-क्रोधादिके रहनेमात्रसे ही स्वरूपकी स्थितिमें कोई बाधा नहीं आ सकती, सो ऐसा कहना नहीं बन सकता । इसमें किसी प्राचीन महर्षिके वचनोंका प्रमाण होना चाहिये, इसके विरुद्ध तो बहुत-से प्रमाण हैं । गीता अध्याय ३ श्लोक ३६ से ४३ तक और अध्याय १६ के श्लोक २१, २२ को देखना चाहिये । इसके सिवा और भी अनेक प्रमाण हैं ।

प्र०-परमात्माकी प्राप्ति तो है ही, किसी भी कालमें

आत्माकी आत्मस्थिति नहीं हटती। केवल भ्रम था सो नष्ट हो गया, स्वप्न भङ्ग हो गया। इसके बाद जो कुछ था सो ही रह गया। अतएव प्राप्ति पहले नहीं थी, पीछे किसी साधनसे हुई, यह बात कैसे कही जा सकती है?

उ०—आत्माकी अपने स्वरूपमें सदा एक सी स्थिति बनी हुई है इसलिये परमात्माको प्राप्त हुए पुरुषके यह भाव भी नहीं रहता कि मुझे पहले अज्ञान था और पीछे अमुक साधनसे अमुक कालमें ज्ञान हुआ है तथापि जो अज्ञानी जीव हैं उनको अपना अज्ञान नष्ट करनेके लिये साधनकी अवश्य ही पूरी आवश्यकता है। जिन पुरुषोंकी अज्ञाननिद्रा नष्ट हो गयी है या संसारका स्वप्ननाशके सदृश अभाव हो गया है उनके अन्तरमें काम-क्रोधादि दुर्गुण कैसे रह सकते हैं? जिस पुरुषकी नींद टूट जाती है उसका स्वप्नसे कोई सम्बन्ध रहता है? क्या स्वप्नका अभाव होनेपर स्वप्नके काम-क्रोधादिका अभाव नहीं होता?

प्र०—प्रारब्धके अनुसार फलोंका भोग करना ही पड़ता है, भोगे बिना प्रारब्धका नाश नहीं होता, जीवन्मुक्तोंको भी प्रारब्धके भोग भोगने पड़ते हैं।

यदि मनुष्य बुरा कर्म न करे तो वह बुरा फल कैसे भोगे? अतएव कामना या इच्छा न होनेपर भी प्रारब्धकी प्रबलतासे पराधीनकी भाँति प्रारब्ध कर्म-भोगके लिये मनुष्यको बुरे कर्म करने पड़ते हैं। इससे ज्ञानमें या स्वरूपकी स्थितिमें क्या बाधा पड़ती है?

उ०—वास्तवमें जीवन्मुक्त पुरुषके लिये तो कोई भी कर्म शेष नहीं रहता। जब उसकी दृष्टिमें एक परमात्माके अतिरिक्त अन्य किसीका भी अस्तित्व नहीं रहता तब किसी भी कर्मका भोग उसे कैसे भोगना पड़ता है ? परन्तु शास्त्रदृष्टि और लोकदृष्टिके अनुसार उसके अन्तःकरण और इन्द्रियोंद्वारा प्रारब्धके भोग भोगे जाते हैं, यह ठीक है। इसलिये मानना चाहिये कि ऐसा प्रारब्ध नहीं बन सकता जो पाप-कर्म किये बिना न भोगा जा सके। यदि पाप-कर्मोंमें प्रारब्धको हेतु माना जाय तो इसमें तीन आपत्तियाँ आती हैं—

१-विधि-निषेधको कथन करनेवाले शास्त्र व्यर्थ होते हैं।

२-ईश्वरकी न्यायशीलतामें दोष आता है। यदि विधाताने स्वयं उसके प्रारब्धमें पाप-कर्मका विधान नियत कर दिया तब उसे उस पापका दण्ड क्यों मिलना चाहिये ! इसके सिवा यह युक्तियुक्त भी नहीं है कि एक अपराधके फलमें पुनः दूसरा अपराध करनेका ही विधान किया जाय, पाप या अपराधका फल दुःख-भोग होना चाहिये, न कि पुनः पाप-कर्म।

३-जिससे चोरी-जारी आदि नीच कर्म बनते हैं वह काम-क्रोधादि दुर्गुणोंसे युक्त है, उसको ज्ञानी कैसे माना जा सकता है; उसको तो नीच ही मानना चाहिये। जब मल, विक्षेप और आवरणरूप तीनों दोषोंके नाश हो जानेपर अन्तःकरणके शुद्ध होनेके पश्चात् ज्ञानकी प्राप्ति होती है तब उस शुद्ध अन्तःकरणमें

काम-क्रोधादि मल कैसे उत्पन्न हो सकते हैं? अतएव यह मानना कि परमात्माकी प्राप्ति होनेके उपरान्त भी प्रारब्ध-कर्म शेष रहनेके कारण काम-क्रोधादि नीच आचरण शेष रह जाते हैं, सर्वथा भ्रममूलक है। काम-क्रोधकी उत्पत्तिका कारण आसक्ति है। (गीता अध्याय २ श्लोक ६२, ६३ * देखना चाहिये) और आसक्तिका सर्वथा अभाव होनेपर परमात्माकी प्राप्ति होती है (गीता अध्याय २ श्लोक ५९ † देखना चाहिये)। जब कारण-का अभाव हो गया तो कार्य किससे उत्पन्न होगा?

---

* ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

† विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥

[१०]

'मनके पाजीपनके सम्बन्धमें लिखा' सो ठीक है। कोई चिन्ता नहीं, प्रेम और हर्षपूर्वक निरन्तर परमात्माके नामका स्मरण होता रहे इस बातकी चेष्टा बड़े जोरके साथ करनी चाहिये। ध्यानके समय आलस्य आवे तो आँखें खोल लेनी चाहिये, फिर भी आलस्य दूर न हो तो सद्ग्रन्थ देखना चाहिये। इतनेपर भी आलस्य रहे तो खड़े होकर टहलते हुए नाम-जप करना चाहिये, यदि किसी तरह भी आलस्य न जाय तो कुछ समय सो जाना उचित है, आलस्यके अधिक होनेमें भगवान्में प्रेमके अभाव और पापोंकी अधिकता ही कारण है। भगवन्नाम-जप और सत्सङ्गके तीव्र अभ्यास बिना कलियुगमें पापोंका नाश होना

कठिन है। भजन अधिक होनेपर यह प्रतीत होने लगेगा कि समस्त संसार कालके द्वारा प्रत्यक्ष नष्ट हो रहा है। सत्सङ्गसे भजन अधिक होता है। भजनकी अधिकतासे भगवान्‌में प्रेम और संसारमें वैराग्य होता है, वैराग्यका प्रादुर्भाव हो जानेपर बिना ही चेष्टाके परमात्माका ध्यान रहने लगता है, तब ध्यानके लिये विशेष साधन करनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती।

लिखी हुई बातें धारण नहीं होतीं, इसीसे मुझमें श्रद्धा कम समझी जाती है, ऐसा लिखा सो भाई! मैं तो साधारण मनुष्य हूँ, श्रद्धा करनेके योग्य तो भगवान् हैं अतएव उनमें और उनके वचनोंमें श्रद्धाकी त्रुटि न रहनी चाहिये।

अभिमान और तृष्णाकी अधिकताके नाश होनेका उपाय पूछा सो भगवान्‌के नामका जप और सत्पुरुषोंका सङ्ग ही सुगम और उत्तम उपाय है। एक भगवान्‌के नामसे ही समस्त दोष नष्ट हो जाते हैं, दोषोंको ठहरनेके लिये स्थान नहीं मिलता। भगवन्नामके परायण होनेपर अन्य किसी उपायकी आवश्यकता नहीं रह जाती। भजन सत्सङ्गके अधिक अभ्याससे भगवानका मर्म जाना जाता है, मर्मके ज्ञानसे जब भगवान्‌में पूर्ण प्रेम हो जाता है तब शरीरमें प्रेमका रहना सम्भव नहीं, जब शरीरमें ही प्रेम न हो तब मान-बड़ाईकी तो बात ही क्या है?

तुमने लिखा कि भगवान्‌की पूर्ण कृपा होनेपर भी हरामी-पन नहीं मिटता सो ठीक है परन्तु भगवान्‌की पूर्ण कृपाका प्रभाव

अभीतक विदित नहीं हुआ है। भगवान्‌की कृपाका निरन्तर अनुभव होते रहनेपर और अपनेको उनका कृपापात्र मान लेनेपर तो चिन्ता-फिकरका रहना सम्भव ही नहीं है। इसके बाद भी यदि चिन्ता रह जाय तो वह प्रभुको लज्जित करनेवाली है। वास्तवमें अभीतक भगवत्कृपाकी पूर्णता मानी नहीं गयी है। बिना माने फल होता नहीं। भजनका अधिक अभ्यास हुए बिना सांसारिक कार्योंसे और लौकिक बातचीतसे प्रीतिका टूट जाना कठिन है। वास्तवमें उस कृपालुकी कृपा तो निरन्तर ही सब-पर पूर्ण है। मनुष्य कृपा करनेवाला कौन है?

यदि भगवन्नामका जप निरन्तर प्रेमसहित नहीं होता हो तो बिना प्रेम ही करना चाहिये। जपके प्रभावसे प्रेम स्वतः ही हो सकता है। तुमने लिखा कि बहुत-से लोगोंका साधन अच्छा दीखता है सो ठीक है। लोगोंके भजन-ध्यानके साधनकी तीव्रताका देखना भी बड़ा लाभदायक है। उनकी देखादेखी साधनको प्रबल करनेके लिये उत्तेजना मिलती है। उत्तेजनासे साधनकी तेजीमें लाभ होता है, इससे भजन बढ़ता है, भजनकी अधिकतासे अन्तःकरणकी शुद्धि होती है और इसके बाद धारणा होती है। भाई हरीराम! तुम्हें अपने इस नामको कभी भुलाना नहीं चाहिये, कभी निराश न होना चाहिये और परमात्माकी निष्काम प्रेमाभक्तिमें मग्न रहना चाहिये। भगवान्‌से कुछ भी माँगना उचित नहीं, प्रेम केवल प्रेमके लिये ही करना चाहिये।

भगवान ही एक प्रेमकी मूर्ति हैं। प्रेमके प्रकृत मर्मको वे ही जानते हैं। संसारमें एक प्रेमके समान और कुछ भी नहीं है। उस प्रेमके मर्मको जाननेके लिये ही परमात्मासे मैत्री करनी चाहिये। मित्रभाव सच्चा होना चाहिये। अपने प्रियतम मित्रके लिये प्राणोंको भी तुच्छ समझना चाहिये। ऐसे प्रेमी ही भगवान्को प्यारे लगा करते हैं। भगवान् प्रेमके अधीन हैं। प्रेमी अपनी प्रेम-रज्जुसे भगवान्को बाँध सकता है। भगवान् अपने प्रेमीका साथ कभी नहीं छोड़ते। सच्चा प्रेमी उसीको मानना चाहिये जो प्रेमके लिये अपना आत्म-समर्पण कर सकता हो, जो अपने तन, मन, धन सर्वस्वको अपने प्रेमास्पदकी सम्पत्ति समझता हो। जो वस्तु अपने प्रेमीके काम आ गयी, वही सार्थक है, यों समझनेवाला ही यथार्थ प्रेमी है। ऐसा प्रेमी ही सर्वथा पूजनीय है।

[१२]

साधनको प्रबल बनानेके लिये विशेष चेष्टा करनी चाहिये; साहस नहीं छोड़ना चाहिये। तुम्हारा जितना सुधार हो चुका है सो तो तुम्हें परम लाभ हुआ है, अब आगेके लिये कुछ करना तुम्हारे साधनके अधीन है! पूर्वकालमें हजारों वर्षोंतक लगातार चेष्टा करनेपर भगवान्के दर्शन हुआ करते थे परन्तु अब तो बहुत ही शीघ्र हो सकते हैं। हाँ, अबतक तुम्हारा जिस प्रकार-का साधन है, उसमें तो शायद् बहुत समय लगे। अतएव अब तुम्हें बहुत जोरके साथ साधनमें लगना चाहिये, श्रीनारायण-देवका साक्षात्कार किये बिना यहाँसे जाना पड़ा, तो बड़ी हानि है। मनुष्यदेह बहुत ही उत्तम कर्मोंसे मिलता है—यह केवल भगवत्-प्राप्तिके साधनके लिये है। मूर्ख लोग ही इसे पतङ्गकी

भाँति सांसारिक भोगोंकी तुच्छ पदार्थों अग्निमें जलाकर भस्म कर देते हैं। तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिये। संसारके भोगोंको अग्निके सदृश समझकर उनसे बचना चाहिये। तुम्हारे अंदर संसारकी आसक्तिका दोष विशेष समझा जाता है, इसीलिये तुम्हें यह चेतावनी दी जाती है। तुम्हें अपनी सारी शक्ति इस साधनमें लगा देनी चाहिये, नहीं तो परमात्माका मिलन कैसे होगा ? तुम्हारे अंदर शक्ति बहुत है, तुम्हें उसे काममें लाना चाहिये और कटिबद्ध होकर साधन करना चाहिये। यदि इतनेपर भी तुम्हें भगवान्‌के दर्शन न हों तो फिर तुम्हारी कोई भूल नहीं। कुछ समझमें नहीं आता कि तुम इस तुच्छ संसारके नाशवान् क्षणभङ्गुर और अनित्य भोगोंके लोभमें फँसकर अपने अमूल्य समयको किस लिये धूलमें मिला रहे हो ? तुम्हें अपने मनसे पूछना चाहिये कि वह उद्धारके लिये विशेष चेष्टा क्यों नहीं करता। इतना हरामीपन कहाँसे आ गया ?

[१३]

संसारमें श्रीनारायणकी भक्तिको बड़े जोरसे बढ़ाना चाहिये। समय बीता जा रहा है। भक्तिका प्रवाह प्रबल हुए बिना कैसे काम चलेगा? आप लोगोंका, इस संसारमें किस हेतुसे आना हुआ है, इस बातका ख्याल रखना चाहिये। उद्देश्य सबसे ऊँचा रखना चाहिये। उत्तम मनुष्यका परम कर्त्तव्य संसारके लोगोंको भगवद्भक्तिमें लगाना और धर्मकी स्थापना करना ही है। जो प्रत्यक्ष नारायणको अप्राप्त मानते हैं उनको विश्वास करानेके लिये और उनका नारायणमें प्रेम होनेके लिये नामके जपका प्रचार करनेकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये। जो इस बातको जानते हैं कि भगवान् ही सर्वत्र व्याप्त हैं और भगवान् ही सबके आत्मा हैं, वे ही महात्मा हैं; उनके लिये भगवान् सब जगह प्रत्यक्ष हैं। उनको कुछ भी करना बाकी नहीं रहता। उन लोगोंके द्वारा जो कुछ किया जाता है, सो केवल लोक-हितके लिये ही किया जाता है। जिनका ऐसा भाव नहीं हुआ है उनके लिये भी इस भावसे साधन करना उत्तम है। उत्तम पुरुषोंके कर्मोंका अनुकरण भी उत्तम होता है।

[१४]

भगवान्‌की स्मृति सदा बनी रहनेके लिये भजन, ध्यान, सत्सङ्गकी तीव्र चेष्टा करनी चाहिये। आपने लिखा कि जपमें बहुत भूल होती है, यह भूल शीघ्र दूर होनी चाहिये। भूलको मिटानेकी इच्छाका होना ही बहुत उत्तम है। भूल क्यों नहीं मिटती, इस बातपर आपको विचार करना चाहिये। भूल मिटानेकी पूरी चेष्टा होनेपर भूल मिट सकती है । संसार, भोग और शरीरको सदा मृत्युके मुखमें देखना चाहिये। सब जगह भगवान्‌को सत्‌रूपसे देखा जाय तो भूल कम हो सकती है। यह मिथ्या संसार बहुत समयके अभ्याससे सत्य प्रतीत होता है। वास्तवमें संसार कोई भी वस्तु नहीं है। सब जगह केवल एक सच्चिदानन्द ही परिपूर्ण है परन्तु विश्वास होना चाहिये। सब जगह भगवान् प्राप्त हो रहे हैं परन्तु ऐसा मानना चाहिये। यह मानना जप, ध्यान और सत्सङ्गकी अधिकतासे सम्भव है। जिन्होंने संसारको हर समय दृढ़ कर रक्खा है, उनको हर समय भगवानका चिन्तन किस प्रकारसे हो सकता है? यदि हर समय लालसा बनी रहे तो भगवानका स्मरण भी बराबर होते रहना कोई बड़ी बात नहीं है। सांसारिक काम करते समय इस शरीरसहित समस्त संसारको मृत्युके मुखमें नाशवान देखनेसे नामकी स्मृति अधिक रह सकती है। संसारके

कामोंको मिथ्या जानकर प्रसन्न चित्तसे हँसते हुए और भगवान्‌को याद रखते हुए खेलकी तरह करना चाहिये या सच्चिदानन्द भगवान्‌के सर्वव्यापी स्वरूपमें स्थित होकर शरीरसे अलग द्रष्टा बने हुए सांसारिक कामोंको करना चाहिये।

श्रीगीताजी अध्याय १४ के श्लोक १९ के अनुसार साधन करना चाहिये।

भगवान्‌में प्रेम बढ़नेका उपाय पूछा सो भगवान्‌का भाव जाननेपर जब तीव्र इच्छा होती है तब प्रेम बढ़ता है और तदनन्तर भगवान्‌की प्राप्ति होती है। धन कमानेकी जितनी चेष्टा होती है यदि उससे अधिक चेष्टा भगवान्‌के मिलनेके लिये की जाय तो भगवान् मिल सकते हैं।

आपने लिखा कि बोलना अधिक पड़ता है तथा काम अधिक देखना पड़ता है, सो इसमें क्या हानि है? भगवान्‌के स्वरूपमें स्थित होकर उनके नामकी स्मृति रखते हुए, प्रसन्न मनसे चेत-चेतकर बोलना चाहिये, यदि ऐसा हो तो बड़े आनन्दकी बात है। अभ्यास करनेसे ऐसी स्थिति हो सकती है। भगवान्‌में ऐसा प्रेम हो जाना चाहिये कि जिससे उनके मिले बिना चित्तमें चैन ही न पड़े! ऐसा होनेपर भूल नहीं हो सकती। यदि एकदम संसारसे प्रेम न हटे तो कोई बात नहीं हर समय भगवान्‌के नामकी याद और उनके स्वरूपका चिन्तन होते रहना चाहिये। फिर आप-से-आप संसारसे हटकर भगवान्‌में प्रेम हो सकता है। सभी जगह एक नारायण ही पूर्ण

हो रहे हैं, नारायणके सिवाय और कुछ है ही नहीं। संसार सभी मिथ्या है, यों जानकर निरन्तर नारायणके चिन्तनकी शरण लेनी चाहिये। संसारके किसी भी पदार्थकी इच्छा कभी नहीं करनी चाहिये, हर समय भगवानके ध्यान आनन्दमें आनन्दमग्न रहना चाहिये।

जो कुछ भी होता है सो भगवान्की आज्ञासे होता है, यों समझकर जो कुछ हो उसीमें प्रसन्न रहना चाहिये। चित्तमें चिन्ता या किसी प्रकारकी इच्छा हो जानेसे तो शरणागतिमें दोष आता है। सभी कुछ उन्हींका स्वरूप है, व भगवान चाहें सो करें। उससे विकार होनेका कोई कारण नहीं। भगवान्के विधानमें अपना किसी प्रकार 'हक उज्र' नहीं रहनेसे, वैराग्य और सत्सङ्गमें प्रेमकी अधिकता देखी जाती है।

विश्वासपूर्वक भजन, ध्यान, सत्सङ्गकी चेष्टा करते रहना चाहिये। यों करते-करते भगवानका मर्म जाना जा सकता है, इसके बाद भजन ध्यान बिना ही चेष्टाके होता रहता है अतएव पहले अभ्यासके द्वारा मर्म जाने। चेष्टा अधिक होनेमें विश्वास ही उपाय है। मर्म नहीं समझनेतक यदि संसारकी स्फुरणाएँ जबरदस्ती होती रहें तो कोई बात नहीं। प्रसन्न मनसे सच्चिदानन्द परमात्माके चिन्तनसहित श्वासके द्वारा नाम-जपकी चेष्टा करनी चाहिये। भगवानकी कृपाके प्रभावका निश्चय अन्तःकरणकी शुद्धि होनेपर होता है, भली-

भाँति विचार करनेपर भगवान्की कृपा, दया आदि गुणोंकी प्रतीति होती है। भजन, ध्यान और सत्सङ्गादि सभी कुछ भगवत्कृपासे होते हैं। अन्तःकरणकी शुद्धि भजन, ध्यान, सत्सङ्गसे होती है। भगवान्में हर समय प्रेम होना एवं संसारसे तीव्र वैराग्य होना तीव्र इच्छाके आधारपर है। जहाँतक इस विषयका पूरा आनन्द नहीं आता, वहाँतक तीव्र इच्छा होनेके लिये चेष्टा करनी चाहिये।

श्रीभगवान्के चरणकमलरूपी नौकाका आश्रय तथा भगवान्के नामजपरूपी रस्सेका आधार हर समय बनाये रखनेका उपाय, तीव्र इच्छा ही है। समय बीता जा रहा है। शीघ्र ही यह शरीर मिट्टीमें मिलनेवाला है। जब शरीर ही अपना नहीं तो रुपये एवं संसारके भोगोंकी तो बात ही क्या है! अतएव आपको एक पलकी भी देरी न करनी चाहिये। आपके ऐसा कौन-सा कार्य है जो श्रीभगवान्के मिलनेमें देरी करा रहा है? श्रीभगवान्का विछोह आपसे सहा जाता है इसीलिये आपको लिखना पड़ता है कि आपने भगवान्का पूरा प्रभाव नहीं जाना। ये रुपये, स्त्री तथा संसारके भोग और संसारकी वस्तुएँ आपके किस काम आवेंगी? अबकी बार तो समझ-बूझकर आपको धोखा नहीं होना चाहिये। ऐसी कौन-सी बाधा है कि जिससे श्रीनारायणके प्रेममें त्रुटि रहती है? आप जिसके लिये भजन-ध्यानमें विलम्ब कर रहे हैं सो कुछ भी काम नहीं आवेगा।

आप जो कुछ अपना मान रहे हैं सो कुछ भी आपका नहीं है। आपके तो एक नारायण हैं अतएव आपको उन्हींकी शरण लेनी चाहिये, और सब कुछ मिथ्या है। ज्यों आप अपनेमें दूसरी किसी भी वस्तुको नहीं देखते, उसी प्रकार भगवान्‌में उनके सिवा कुछ भी नहीं है। स्वप्नमें जो कुछ भासता है सो वास्तवमें कुछ भी है नहीं। इसी प्रकार संसार जो भासता है सो कुछ भी नहीं है। जहाँ आप हैं उस जगह और आपके अंदर, दूसरा कुछ भी अंश अनुमान नहीं होता। इसके अर्थको यदि आप नहीं समझें तो किसी समय मिलनेपर पूछना चाहिये। यही भगवान्‌के अस्तित्वका (होनेपनका) भाव लिखा गया है। शरीरमें बहुत-से विकार हैं। अन्तःकरणमें भी विकार हैं। परन्तु जहाँ आप हैं उस जगह कुछ भी विकार नहीं। जहाँ आप हैं उस जगह दूसरी वस्तुको स्थान ही नहीं। इस प्रकार भगवान्‌के आनन्दस्वरूपकी घनता है। सच्चिदानन्दघनके सिवाय और कुछ भी नहीं, ऐसा मानना चाहिये। वास्तवमें कोई है भी नहीं। इस प्रकार विश्वास करना चाहिये कि सब जगह भगवान् ही हैं। यदि ऐसा अनुभव हो जाय तो सब जगह भगवान् ही भासने लगें। कदाचित् इसके बाद संसारका भास हो तो भी कोई आपत्ति नहीं। यदि हर समय इस प्रकार ध्यान बना रहा तो भी भगवत्की प्राप्ति है।
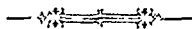
[१५]

आपको वही काम करना चाहिये कि जिससे भगवान्‌की प्राप्ति शीघ्र हो। पपीहेकी तरह मनमें धारणा करके दृढ़प्रतिज्ञ होना चाहिये। प्राण भले ही चले जायँ परन्तु भगवत्प्राप्तिके साधन—भजन-ध्यान—एक पलके लिये भी नहीं छूटने चाहिये। भजन-ध्यान और सत्सङ्गमें त्रुटि क्यों की जाती है? फिर पछतानेसे कुछ भी न होगा। आपके पास ऐसी कौन-सी शक्ति है कि जिससे आप मृत्युसे बच सकते हैं? अतएव पपीहेकी भाँति प्राणोंकी परवा न कर प्रणको निबाहना चाहिये।

पपिहा प्रण कबहुँ न तजै, तजै तो तन बेकाज ।
तन छूटै तो कछु नहीं, प्रण छूटै तो लाज ॥

यों विचारकर आपको वह काम कभी नहीं भूलना चाहिये, जिस कामके लिये आपका संसारमें आना हुआ है। भगवान्‌के नाम-जप, ध्यान और सत्सङ्गका मनमें बड़ा जोर रखना चाहिये। सत्सङ्ग, भजन और ध्यान वैराग्यके बिना नहीं हो सकते। संसारके भोगोंमें वैराग्य हुए बिना ईश्वरमें पूर्ण प्रेम नहीं हो सकता। संसारके सुख तथा रुपये किस काम आवेंगे? सब कुछ यहीं रह जायगा। यदि भगवान्‌के नामका जप न हुआ तो संसारके सुख किस कामके?

सुखके माथे सिल पड़ो, (जो) नाम हृदयसे जाय।
बलिहारी वा दुःखकी, (जो) पल-पल राम रटाय॥

शरीर और रुपये यहीं रह जायँगे, आगे चलकर ये आपके किसी काम नहीं आवेंगे, अतएव जबतक इनपर आपका अधिकार है तबतक आप इनसे अपनी इच्छानुसार काम ले लें। ईश्वरकी प्राप्तिमें पुरुषार्थ ही प्रधान है, यों समझकर धनको धूलिके समान जान उस असली आनन्दमें बड़े जोरसे लगना चाहिये कि जिससे शीघ्र ही भगवान् मिलें।

[१६]

जब आपका शरीर छूट जायगा तब शरीर और रुपये किस काम आवेंगे ? सभी कुछ मिट्टीमें मिल जायगा। इसलिये जबतक आपको अधिकार है कि आप जो चाहें सो करें, तब देर क्यों लगाते हैं ? समय बीता जाता है। सब वस्तुओंको निश्चय ही छोड़ना पड़ेगा। पीछे पछतानेसे कुछ भी काम न होगा। इस प्रकार जानकर मनुष्यको उस परमानन्दस्वरूपमें मग्न हो जाना चाहिये। 'मैं और मेरा' के भावको तुरन्त छोड़ देना चाहिये। नहीं तो बहुत ही हानि होती है—

मैं जाना मैं और था, मैं तो भया अब सोय।
मैं तैं दोऊ मिट गई, रही कहन को दोय॥

ऐसा भास होनेका उपाय हर समय करना चाहिये। दूसरे काममें एक पल भी बिताना महा मूर्खता है। इसका कारण अविश्वास है। इसलिये नाम-जपके साथ ऐसी मान्यता होनी चाहिये कि जो कुछ है सब ॐ ही है। मैं कुछ भी नहीं हूँ। जब मैं ही नहीं तब 'मेरा' कुछ हो ही नहीं सकता। एक ॐ अर्थात् सच्चिदानन्दघन ही है। सर्वव्यापी, शान्तानन्द, पूर्णानन्दसे भिन्न और कुछ भी नहीं है। नाम-जपके साथ-साथ अर्थमें भी ध्यान रहना चाहिये। ध्यान ऐसा होना चाहिये कि उसमें मन पूर्णरूपसे लीन हो जाय। आनन्दघनको ही अपना स्वरूप समझकर, आनन्दघनमें ही अपने आपको समझकर,

सारे जगत्‌को अपने एक अंशमें कल्पित मान, आनन्दघनमें स्थित होनेसे 'मै' स्वयं ही शान्त हो जाता है। दृश्यका अभाव होनेपर 'मै' का अभाव स्वयमेव हो सकता है।

पपीहेकी बात पूछी सो पपीहेके प्राण भले ही चले जायँ, परन्तु सुना है कि वह वर्षाके जलके सिवा पृथ्वीपर पड़ा हुआ जल नहीं पीता है।

चातक सुतहि पढारही, आननीर मत लेय।
मम कुल यही सुभाव है, स्वाति बूँद चित देय॥

इसी प्रकार भगवान्‌से प्रेम लगाना चाहिये। सुना है, भगवान्‌से भी गर्भमें यह प्रतिज्ञा की हुई है कि मैं आपका स्मरण करूँगा। इसलिये उस प्रणको जिसके लिये आप (ससारमे) आये थे, कभी न छोड़ना चाहिये। भगवान्‌में प्रेम होनेका उपाय पूछा सो भगवान्‌के नामका जप एवं ध्यान करना ही सच्चा उपाय है। भगवान्‌के नामका जप और स्मरण अधिक होनेका उपाय सत्सङ्ग है। सत्सङ्ग करने और भगवान्‌के गुणानुवाद पढ़नेसे, भगवान्‌में श्रद्धा होकर भगवान्‌का स्मरण अधिक रहनेसे, पापोंका नाश होकर पूर्ण प्रेम हो ही जाता है, ऐसा सुना गया है। इसलिये मनको संसारके सब भागोंकी तरफसे खींचकर, केवल परमात्माके नामका जप और ध्यान अधिक हो, सो उपाय करना चाहिये। झूठे सुख आपके किस काम आवेंगे!

सुखके माथे सिल पड़ो, (जो) नाम हृदयसे जाय।
बलिहारी वा दुःखकी, (जो) पल पल नाम रटाय॥

शारीरिक सुख-भोग तथा रुपये यहीं रह जायँगे। अनित्य वस्तुके लिये नित्य वस्तुका त्याग करनेवालेके बराबर कौन मूर्ख है? संसारकी चीजें, रुपये और शरीरको, सच्चिदानन्द भगवान्‌की प्राप्ति जल्दी हो, ऐसे काममें लगाना चाहिये।

हर समय भगवान्‌का नाम याद रहनेके विषयमें पूछा सो भगवान्‌में प्रेम होनेसे एवं संसारके भोगोंसे तीव्र वैराग्य होनेसे ही रह सकता है। प्रेमसहित भगवान्‌के नामका जप होनेका उपाय पूछा सो मैं क्या कह सकता हूँ। परन्तु कुछ लिखा जाता है। भगवान्‌के गुणानुवाद एवं प्रभावकी बातें पढ़ने, सुनने और मनन करने तथा भगवान्‌के स्वरूपका चिन्तन करते हुए प्रसन्न चित्तसे आनन्दमें मग्न होकर बारंबार स्मरण करना चाहिये। जैसा कि संजयने गीता अ० १८ श्लोक ७७* में कहा है। जप और ध्यानमें भूल न हो, ऐसा उपाय करना चाहिये। इस प्रकारकी इच्छाका होना ही बहुत उत्तम है। ऐसी इच्छा होनेपर विशेष विलम्ब नहीं होता। क्योंकि सच्ची इच्छावाला मनुष्य प्रयत्न-पूर्वक तत्पर हो जाता है। जिसे निरन्तर भजन-ध्यान करनेकी इच्छा होगी, उसे भजन-ध्यानके सिवा और कुछ भी अच्छा नहीं लगेगा। ऐसा होनेपर स्फुरणा भी कम हो जाती है। यदि

---

* तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः।
विस्मयो मे महान् राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः॥

हे राजन्! श्रीहरिके उस अति अद्भुत रूपको भी पुनः-पुनः स्मरण करके मेरे चित्तमें महान् आश्चर्य होता है और मैं बारंबार हर्षित होता हूँ।

जपके समय स्फुरणा हो, तो होती रहे, परन्तु निष्काम भावसे जप हर समय होना चाहिये। अधिक जप होनेसे जब भगवान्में प्रेमसहित अपने आप ध्यान होने लगता है तब स्फुरणा भी अपने आप नष्ट हो जाती है। यदि कुछ स्फुरणा हो तो भी विशेष देरतक ठहर नहीं सकती। जबतक संसारमें प्रेम और उसकी सत्ताका नाश नहीं होता तभीतक स्फुरणा होती है, इसमें कुछ हानि नहीं है। भगवान्में अधिक प्रेम होनेका उपाय भगवान्का चिन्तन करना ही है। चाहे जैसे भी हो उसका चिन्तन होना चाहिये। यदि चिन्तन न हो सके तो भगवान्के नामका जप तो अवश्य ही होना चाहिये। जिसमें प्रेम होगा उसका ही चिन्तन अधिक होगा।

क्रोधकी बात मालूम हुई। संसारमें सत्ता और प्रेमका अभाव होनेपर क्रोधका समूल नाश हो जाता है। परन्तु हर समय मृत्युको याद रखनेसे, जो कुछ भी भासता है सो सब मृत्युके मुखमें समझनेसे, कालान्तरमें अभाव समझनेसे, भगवानकी लीलामात्र जाननेसे एवं परमेश्वरके स्मरणसे भी, क्रोध नहीं हो सकता। जो कुछ भी हो उसीमें आनन्द मानना चाहिये। जो कुछ होता है सो सब परमेश्वरकी आज्ञासे होता है। जो कुछ है सो परमेश्वरका ही है। उसीकी लीलामात्र समझकर, आनन्द ही मानना चाहिये। उसमें विरुद्ध इच्छा ही क्यों करनी चाहिये ? इच्छा ही क्रोधका मूल है। ..

[१७]

ध्यान अच्छी तरह नहीं लगता सो नामके जपका निरन्तर अभ्यास होनेकी पूर्ण चेष्टा होनेसे ही लग सकता है। भगवान्के नामका हर समय जप होनेके लिये सत्सङ्ग करने और शास्त्रोंको पढ़नेके अभ्यासकी चेष्टा होनी चाहिये। तीव्ररूपसे हर समय भगवान्के नामका जप होने लगे तो फिर भगवान्में प्रेम उत्पन्न होकर अपने आप प्रेमसहित जप होने लग जाता है। फिर भगवान्की कृपाका प्रभाव भी आप ही ज्ञात हो जाता है। भगवान्की तो पूर्णरूपसे कृपा है ही परन्तु वह योग्य पात्रमें प्रत्यक्ष भासती है। जैसे सूर्यका प्रकाश सब जगह परिपूर्ण होनेपर भी दर्पणमें प्रत्यक्षवत् भासता है। भगवान्की कृपाका थोड़ा-सा प्रभाव जाननेपर साधक जो कुछ होता है सो सब भगवान्की कृपा ही समझता है और तब वह अपनी इच्छाको छोड़कर साक्षी होकर आनन्दमें मग्न रहता है। भगवान्में इतना प्रेम बढ़ता है कि भगवान्को वह छोड़ ही नहीं सकता। पुरुषार्थ अधिक होनेसे ही भजन अधिक होता है। भजन अधिक होनेसे

ही भगवान्‌का प्रभाव जाना जाता है। भगवान्‌के नामका जप अधिक करनेके अभ्यासकी अधिक चेष्टा करना, अपने ही पुरुषार्थके अधीन है।

आपने लिखा कि भगवान्‌के प्रेमका विषय जाननेसे ही जाना जायेगा, सो उसके जतानेवाला भी भगवानका भजन-ध्यान ही है। भजन-ध्यानद्वारा हृदय शुद्ध होनेसे प्रेम उत्पन्न होता है। आपने लिखा कि मेरा बहुत समय बीत गया है, अब जल्दी ही उपाय होना चाहिये सो ऐसी इच्छा होनी बहुत ही उत्तम है। आपने लिखा कि ऐसा सुअवसर पाकर भी यदि उद्धार न होगा तो फिर कब होगा? सो ठीक ही है। जो इस प्रकार समयके प्रभावका जान लें, उनका समय भजन ध्यानमें ही बीतना चाहिये। समयका मूल्य जाननेपर अपना उद्धार होना कौन बड़ी बात है? बल्कि उसके द्वारा अन्यान्य अनेक प्राणियोंका भी उद्धार हो सकता है। अपना उद्धार चाहे न हो, केवल प्रेमसहित भगवान्‌का चिन्तन होना चाहिये। यदि आपकी बहुत शीघ्र उद्धारका उपाय होनेकी इच्छा बनी रही तो अति उत्तम है। फिर कुछ चिन्ता नहीं। आपने लिखा कि अभी आनन्द नहीं होता सो आनन्द चाहे न हो, केवल प्रेमसहित भगवान्‌का चिन्तन होना चाहिये। आनन्दकी इच्छा तुच्छ है। ध्यान आनन्दके लिये थोड़े ही किया जाता है? भजन और ध्यान तो भगवान्‌के लिये किया जाता है। मैंने आपको भगवान्-

का भक्त लिखा था सो ठीक ही लिखा था एवं कई बात जानने की भी आवश्यकता थी। परन्तु पूर्ण भक्त होनेपर मैं और मेरेका अभाव हो जाता है।

संयोग-वियोग सब अन्न-जल (संयोग) के अधीन हैं। मिलना चाहे कम ही हो परन्तु प्रेम होना चाहिये, सो आपका है ही: परन्तु निष्काम प्रेम जितना बढ़े उतना ही उत्तम है।

आपने लिखा कि जैसा इस बार ध्यान हुआ वैसा थोड़ा भी धारण हो जावे तो कृतकृत्य हो जाऊँ। सो कृतकृत्य चाहे न होवें परन्तु प्रेमसहित निरन्तर ध्यान रहना चाहिये। निष्कामभावसे भगवान्‌का निरन्तर भजन करनेवाले पुरुषोंके दर्शनसे हजारों पुरुष कृतकृत्य हो जाते हैं, यदि वे श्रद्धा और भक्तिसहित भक्तोंके दर्शन एवं उनके प्रभावको जानें।

संसार मिथ्या है। भगवान्‌की लीला है। उसे सच्चा जानने-से आसक्ति होकर इच्छा उत्पन्न होनेसे मनुष्यमें बहुत-से दोष आ जाते हैं। इसलिये भगवान्‌की शरण लेना ही उत्तम है। जो कुछ होता है सो सब भगवान्‌की आज्ञासे ही होता है। भगवान्‌की शरण होनेपर उनकी आज्ञाको क्यों टालना चाहिये ? जो कुछ होता है सो उसका कल्पित—मिथ्या और उसकी लीलामात्र है। चाहे सो हो हमें कोई आपत्ति नहीं। केवल साक्षी रहना

चाहिये। यदि ऐसा होनेपर भी दुःख हो तो (समझना चाहिये कि) भगवानकी शरण ही नहीं ली। भगवान् जो कुछ भी करें उसे आनन्दसहित धारण करना चाहिये। यदि मनमें थोडा-सा भी दुःख हो तो समझना चाहिये कि स्वामीके किये हुए पर विश्वास ही नहीं है। सब कुछ स्वामीका ही तो है। वह अपनी वस्तुको चाहे जिस प्रकार वर्त सकता है, हमें क्या मतलब है? इसमें मनको मैला करनेसे (दुःख माननेसे) मालिक हमें मूर्ख समझ लेता है कि इसने मिथ्या वस्तुएँ सच्ची और अपनी मान रक्खी हैं। यह संसारकी मिथ्या वस्तुओंका आश्रय लेता है। यह मूर्ख संसारका दास है। जो ससारका दास होगा वही ससारकी इच्छा करेगा। सासारिक वस्तुओंकी इच्छा करनेवाला ही ससारमें जन्म लेता है। ऐसा पुरुष भगवान्के अन्तःकरण एवं मनका स्वामी नहीं हो सकता। भगवान्के सर्वस्वका तो वह मालिक होता है जो भगवान्का प्रेमी होता है। संसारके भोगोंका प्रेमी तो एक ससारका कीडा है। संसारके भोगोंको मिथ्या और लीलामात्र जानकर अपने मनसे उनका त्याग कर देना चाहिये। जो त्रैलोक्यके राज्यको तुच्छ समझकर केवल एक नारायणका ही प्रेमी है वही धन्यवादका पात्र है, भगवान् हर समय उसके पास ही रहते हैं।

[१८]

वैराग्यकी उत्तेजना सर्वदा बनी रहनेका साधन पूछा सो इसका साधन भजन, ध्यान और सत्सङ्गका तीव्र अभ्यास ही समझा जाता है। संसारमें दुःख और दोषबुद्धि होनेसे भी वैराग्य होता है परन्तु संसारमें अभाव और सच्चिदानन्दमें भाव-बुद्धि हुए बिना संसारसे पूर्ण वैराग्य नहीं होता।

श्रीसच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपकी प्रेमसहित स्थिति बनी रहनेका उपाय पूछा सो प्रेम और प्रभावसहित भजन और सत्सङ्गके तीव्र अभ्यासकी तीव्र चेष्टा ही एक उपाय है, यही मेरी समझमें आता है, अतएव निरन्तर अभ्यास होनेके लिये विशेष चेष्टा करनी चाहिये। फिर प्रेम तो अपने आप हो सकता है।

निरन्तर प्रेमसहित अभ्यास होनेके विषयमें जोरदार उपाय पूछा सो मेरी समझसे तो आलस्यको त्यागकर, शरीरको मिट्टीके समान समझकर, विश्वासपूर्वक तन-मनसे ध्यान और जपकी तीव्र चेष्टा करनी चाहिये। ध्यानकी स्थितिके समय यदि स्फुरणा हो तो जो कुछ भासे उसको केवल कल्पित और मृग-तृष्णाके जलवत् समझना उचित है। कुछ भी नहीं है, ऐसा मानकर दृश्यके लक्ष्यको भुला देना चाहिये एवं अनित्य समझ-कर उसे छोड़ देना चाहिये। केवल अचिन्त्यमें अचिन्त्य होकर

संकल्प-त्यागके ज्ञानको भी भूल जाना उचित है । केवल सच्चिदानन्दघनके सिवा और कुछ है ही नहीं, ऐसा भाव हो जाना चाहिये । यदि वैराग्य होता है तो बिना चेष्टाके भी साधन सब तरहसे ठीक रह सकते हैं । परन्तु अन्तःकरण शुद्ध हुए बिना वैराग्य विशेष समयतक ठहरना कठिन है । संसार और शरीरको क्षणभङ्गुर और कालके मुँहमें देखनेसे एवं समय-को अमूल्य समझकर भजन तेज करनेसे, भजन-ध्यान अधिक होकर अन्तःकरण निर्मल हो जाता है और जब अन्तःकरण-के पाप और दोष नष्ट हो जाते हैं तब वैराग्य अधिक समय-तक ठहर सकता है ।

× × × × के पत्रमें लिखे हुए ध्यानके विषयका खुलासा पूछा सो इसका साराश इस प्रकार समझमें आता है—

(१) सब जगह एक सच्चिदानन्दघन ही समानभावसे स्थित है । उसमें जो कुछ दृश्य वस्तुएँ भासती हैं सो हैं ही नहीं। जिसके द्वारा भासता है और जो कुछ भासता है सो शरीर और संसार सब कल्पनामात्र हैं । वास्तवमें एक परमेश्वर ही समभावसे सब जगह पूर्ण हो रहा है । यदि और कोई चीज भासे तो उसको न मानें, केवल आनन्दघन ही बाकी रह जायँ और उस आनन्दघनके होनेपनका भाव भी उस आनन्दघनमें ही है । आनन्दघनको जाननेवाला कोई अलग नहीं ।

(२) सर्वव्यापक सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें

स्थित होकर, उस सर्वव्यापक स्वरूपके अन्तर्गत संसारको सङ्कल्पके आधार मान, सर्वव्यापक द्रष्टा होकर सर्वव्यापक ज्ञाननेत्रोंसे संसारको कल्पित और परमात्मासे भिन्न देखे। गीता अध्याय १४ श्लोक १९ के अनुसार सर्वव्यापकके अन्तर्गत कल्पित शरीरके द्वारा हर समय भजन हो रहा है।

सर्वव्यापक भगवत्-स्वरूपमें स्थित रहते हुए, उस शरीर-सहित भजनको समष्टिबुद्धिसे अर्थात् सर्वव्यापी ज्ञान-नेत्रोंसे देखे।

(३) सर्वव्यापक अनन्त बोधस्वरूप द्रष्टा होकर, इस मनुष्यशरीरको जिसमें पहले अपनी स्थिति थी, उसे ॐकारका आकार समझकर ॐकारका चिन्तन करता रहे। उस ॐकार-रूप शरीरको अपने संकल्पके आधार समझे। वास्तवमें उस सच्चिदानन्दघनसे भिन्न और कुछ है ही नहीं। इसी तरह अपने निश्चयमें स्थित रहे। ऐसा दृढ़ अभ्यास होनेसे एक सच्चिदा-नन्दघनके सिवा और कुछ रहता ही नहीं, कल्पित शरीरका लक्ष्य भी छूट जाता है। ॐकारका अर्थ सच्चिदानन्दघन है और वही शेषमें बच जाता है। ॐकारके चिन्तनको जानकर नहीं छोड़ना चाहिये। एकान्तमें इस तरह साधन करना चाहिये।

(४) श्रीसच्चिदानन्दघनका भाव (होनापन) और शरीर, संसार तथा जो कुछ भी चिन्तनमें आवे उसका अत्यन्त अभाव याने दृश्यमात्र कुछ है ही नहीं, ऐसा दृढ़ निश्चय होना

चाहिये । इस तरह दृढ निश्चय होनेसे एक सच्चिदानन्दघनके सिवा सबका अभाव होकर परमानन्दमय एक सच्चिदानन्द ही सब जगह रह जाता है, यही परमपद है ।

उपर्युक्त समाचार × × × × की चिट्ठीके भाव हैं । मेरी बुद्धिके अनुसार ध्यानके विषयमें ठीक समझमें आनेके लिये कुछ और भी विस्तारसे लिखा है ।

समयको अमूल्य जानना चाहिये । ऐसा जाननेवाला एक पल भी मिथ्या कामोंमें नहीं खोता । जो मिथ्या और वृथा कामोंमें समय व्यतीत करता है वह समयके मूल्यको नहीं जानता, अल्प मूल्यवाली वस्तुको भी कोई व्यर्थ खोना नहीं चाहता, फिर वह अमूल्य वस्तुको तो व्यर्थ खो ही कैसे सकता है ?

जिस ध्यानके समय आनन्दकी लालसा रहती है वह ध्यान नीची श्रेणीका है । ऐसा चाहनेवालेने तो थोड़ी देरके सुख या आनन्दके लिये ही ध्यान लगाया । भगवान्‌का चिन्तन ही एक अमूल्य वस्तु है । इस मर्मको जाननेवाला तो निरन्तर ध्यान बना रहे ऐसी ही चेष्टा करेगा, आनन्दकी आकांक्षा नहीं रक्खेगा, थोड़े समयके लिये होनेवाला आनन्द चाहे न हो उसकी कोई गरज नहीं, परन्तु भगवानका चिन्तन निरन्तर रहना चाहिये ।
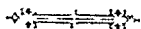
[१९]

समय बीता जा रहा है। जो कुछ करना हो सो जल्दी कर लेना चाहिये। तुम किसलिये विलम्ब कर रहे हो? तुम्हें क्या जरूरत है? तुमको किसका ख्याल ····· है? तुम्हें नारायण-को एक पलकके लिये भी बिसारना नहीं चाहिये। अन्तमें एक नारायणको छोड़कर और कोई भी तुम्हारा नहीं होगा। इस असार संसारमें कुछ भी सार नहीं है। सब मायाकी ठगी है। इस प्रकार समझकर बुद्धिमान् तो इसके जालमें नहीं फँसता। परन्तु जो नहीं समझता सो इस मायारूपी ठगनीके मोह-जालमें भोगरूपी दानेके लोभमें पड़कर फँस जाता है।

[२०]

'दर्दके कारण अधिक समय लेटे रहना पड़ता है और उससे आलस्य तथा निद्रा अधिक आती है, इससे साधनमें अधिक भूलें होती हैं' लिखा, सो ठीक है। ऐसे अवसरपर श्रीगीताजीके अर्थका अभ्यास करना चाहिये। यदि अधिक समय अभ्यास करनेके कारण निद्रा आवे तो ध्यानसहित भजन करते हुए ही सोना चाहिये। भगवान्‌का स्मरण रखनेमें बहुत भूलें होती हैं तो उसके मिटनेका उपाय तीव्र अभ्यासकी चेष्टा ही है।

भगवान्‌में प्रेम बढ़नेके विषयमें पूछा सो इस सम्बन्धमें पहले लिखा ही था। भगवान्‌के गुणानुवादोंको पढ़ने, सुनने, कहने तथा उनके लक्षण, आशय और प्रभावकी ओर ध्यान देनेसे भगवान्‌में प्रेम अधिक हो सकता है और ये सब बातें तीव्र भजन और सत्सङ्ग करनेसे ही सिद्ध होती हैं। जिस वस्तुकी तीव्र इच्छा होती है उसके लिये स्वाभाविक ही बहुत अधिक प्रयत्न और चेष्टा की जाती है। जिनको रुपयोंकी आवश्यकता होती है वे

उन्हें प्राप्त करनेके लिये अनेक चेष्टाएँ तन-मनसे करते हैं और उनके मनमें प्रायः हर घड़ी यही चिन्ता बनी रहती है कि रुपये किस तरहसे पैदा हों? रुपये पैदा करनेके उपायमें वे अपना मन-बुद्धि सब कुछ अर्पण कर देते हैं। जिनको रुपयोंकी विशेष इच्छा होती है उनको रुपयोंकी ही अधिक चिन्ता होती है। इसी प्रकार जिनको भगवान्‌से मिलनेकी इच्छा होती है उनके मन-बुद्धि भी भगवान्‌को ही अर्पित हो जाते हैं। एवं उनकी तीव्र इच्छा भगवान्‌के मिलनेके उपाय, भजन और सत्सङ्ग करनेकी ही हो जाती है। तीव्र इच्छा होनेसे कैसी दशा होती है? यह रुपयेके उदाहरणसे जाना जा सकता है। जिस वस्तुकी तीव्र इच्छा होती है उसके लिये उपाय और चेष्टा भी तीव्र ही की जाती है।

कोई मनुष्य बीमार है। वैद्य कहता है कि अमुक वस्तु आनेसे यह बच सकता है। ऐसे समय उस वस्तुके लिये कितनी अधिक चेष्टा होती है। ऐसी ही चेष्टा भजन और सत्सङ्गके लिये होनी चाहिये। इच्छाके तीव्र होनेसे ही तीव्र चेष्टा होती है और तीव्र चेष्टा होनेसे ही इष्ट वस्तुकी प्राप्ति होती है। मिथ्या सांसारिक वस्तुएँ तो चेष्टा करनेपर भी शायद नहीं मिलतीं एवं मिल जानेपर भी रोगीको शायद लाभ पहुँचे अथवा न भी पहुँचे, परन्तु भजन और सत्सङ्गके लिये चेष्टा करनेसे तो अवश्य ही सफलता प्राप्त होती है। भजन-सत्सङ्गरूपी औषध-का बहुत दिनोंतक सेवन करनेसे जन्म-मरणरूपी कठिन भव-

रोग अवश्य ही नष्ट हो जाता है। सत्यकी चेष्टा कभी व्यर्थ नहीं जाती।

'जपमें अधिक भूलें होती हैं' लिखा, सो उसके लिये पहले आपको लिखा ही था। जपका अधिक अभ्यास करनेसे ही जपकी भूल दूर हो सकती है एवं भूल होनेपर भी प्रसन्नमनसे जप करनेका अभ्यास रखनेसे आगे चलकर प्रेमपूर्वक जप हो सकता है। जिस समय जप निरन्तर होता है उस समय तो प्रेमपूर्वक ही होता है। वैराग्य होनेपर तो ध्यानसहित जप बिना चेष्टाके ही निरन्तर होता रहता है। 'भगवानका स्मरण हर समय रहना चाहिये' ऐसी इच्छा ही भगवान्का निरन्तर चिन्तन होनेमें हेतु है। यदि जप करते समय संसारकी स्फुरणा हो तो बलात्कारसे भगवत् विषयक स्फुरणा उत्पन्न करानेका अभ्यास करना चाहिये। ऐसा अभ्यास करनेसे जपके साथ-साथ ध्यानकी वृद्धि और सांसारिक वासनाका नाश हो सकता है। यदि सत्ता और आसक्तिसे रहित स्फुरणा हो तो कुछ हानि नहीं। संसारकी सत्ता और आसक्तिका नाश होनेका उपाय जप और सत्संग है। इनके होनेमें अभ्यासकी बहुत अधिक आवश्यकता है।

भगवन्नामका स्मरण हर समय रहना चाहिये। फिर तो अभ्यास बढनेसे संसारमें वैराग्य एवं भगवान्के स्वरूपमें स्थिति भी हो सकती है। श्रीपरमात्मादेवकी तो सबपर पूर्ण कृपा है। जिसको ऐसा निश्चय हो जाता है वही भगवान्का

कृपापात्र है। फिर उसको शीघ्र ही भगवान् मिल जाते हैं क्योंकि उससे विना मिले उन्हें चैन नहीं पड़ता। संसार और शरीरको मिथ्या एवं नाशवान् और एक परमात्माको आनन्दसे परिपूर्ण देखनेसे भी वैराग्य हो सकता है। संसारमें घृणा होने-से संसारका चिन्तन आप ही कम हो सकता है।

प्रेम होनेका उपाय उसके स्वरूपका चिन्तन, नामका जप और सत्संग ही है। जितनी ही अधिक चेष्टा होगी उतना ही अधिक जप होगा। जो भगवान्‌को सर्वज्ञ, अन्तर्यामी, दयासिन्धु एवं विना कारण ही हित करनेवाला जानेगा सो कभी किसी वस्तुके लिये उनसे प्रार्थना नहीं करेगा, यदि वह प्रार्थना करेगा तो निरन्तर भावसहित चिन्तन होनेके लिये ही करेगा। हर समय नामको याद रखनेका अभ्यास हो जाय तो फिर ध्यानकी स्थिति भी हो सकती है। भगवान्‌को याद रखते हुए ही सांसारिक काम हों ऐसी चेष्टा रखनी चाहिये। सांसारिक कामोंकी अपेक्षा भजन-ध्यानको बहुत उत्तम और बहुमूल्य समझना चाहिये। संसारके कामोंकी चाहे कितनी ही हानि क्यों न हो, परन्तु उन अनित्य कामोंके लिये भजन-ध्यान नहीं छूटना चाहिये। इस प्रकारकी पक्की धारणा हो जानेसे संसारके काम करते हुए भी भजन हो सकता है।

विवाहके कामके समय किस तरह क्या करना चाहिये इस सम्बन्धमें भी पहले लिखा ही था। विवाह आदि सांसारिक काम नदीके प्रवाहकी तरह हैं। जो कोई पुरुष भगवत्-चरण-

रूपी नौकापर नामरूपी रस्सेको पकड़कर ध्यानद्वारा आरूढ हो जाता है, वही बच सकता है। जो नदीके प्रवाहमें बह जाता है उसकी बड़ी बुरी दशा होती है।

भजन-सत्संग अधिक होनेसे अन्त करण शुद्ध हो जानेपर धारणा होनेमें देर नहीं होती। सांसारिक कामना रहने न पावे इस बातकी चेष्टा तो आप करते ही हैं परन्तु इसके लिये और भी अधिक चेष्टा और पुरुषार्थ करना चाहिये। इस काममें अभ्यास ही प्रधान है। अभ्यास भगवत् कृपासे स्वतन्त्र है। आपने संसारमें आकर क्या किया? इस प्रकार यदि समय बीतता गया तो काम जल्दीसे कैसे पूरा होगा? समयको अमूल्य कामोंमें ही बिताना चाहिये। फिर संसार और रुपये तथा भोग किस काम आवेंगे? वस्तु वही अपनी है जो भगवान्में अपना अधिक प्रेम करावे। शेष सब मिट्टी है। सोने-के और पत्थरके पहाड़ोंमें क्या अन्तर है? कोई भी साथ जाने-वाला नहीं है। शरीर भी मिट्टीमें मिलनेवाला है। इस प्रकार जानकर इस शरीरसे पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहिये। भगवान्-के भजन-ध्यानके सिवा एक पल भी वृथा क्यों जाय? किसी भी बातके लिये एक पल भी बिना भजन-ध्यानके नहीं जाने देना चाहिये। क्योंकि सभी कुछ अनित्य है। अनित्यके लिये अपना अमूल्य समय हाथसे कभी न खोना चाहिये।
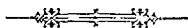
काम, क्रोध, लोभ और मोह आदि शत्रु अपने असली धनको लूट रहे हैं इसलिये राम-नामकी बिगुल बजाते रहना चाहिये। बिगुल बजती रहनेसे जैसे शत्रु (डाकू) समीप नहीं आते वैसे ही रामनामरूपी बिगुलके बजते रहनेसे काम-क्रोधादि शत्रु भी समीप नहीं आते, अतएव चेत करना चाहिये।

बिन रखवारे बावरे, चिड़िया खाया खेत।
आधा परधा ऊबरै, चेत सकै तो चेत॥
इस औसर चेता नहीं, पशु ज्यों पाली देह।
रामनाम जाना नहीं, अंत पड़ी मुख खेह॥

इन दोनोंके तात्पर्यको विचारना चाहिये। सत्संग और भगवन्नामका निष्कामभावसे प्रेमपूर्वक निरन्तर जप करना ही परम पुरुषार्थ है, तदनन्तर भगवान्‌में प्रेम-विश्वास और उनका ध्यान तो अवश्यमेव हो जाता है। अपने जीवनकी अवधिका समय समीप आ रहा है इसलिये अज्ञाननिद्रासे शीघ्र ही सचेत होनेकी आवश्यकता है।

इस देव-दुर्लभ मनुष्य-शरीरको प्राप्त करके ऐसे जीवनको व्यर्थ न गँवाकर सार्थक करना चाहिये। जो व्यक्ति मनुष्य-जन्मको प्राप्त करके भी भगवद्भजन नहीं करता है वह अन्तमें भारी पश्चात्ताप करता है, क्योंकि जब अपना शरीर भी किसी कार्यमें नहीं आवेगा तब और पदार्थोंकी तो आशा करनी ही व्यर्थ है।

[२२]

तुम्हें जिस कामके लिये संसारमें मनुष्य-शरीर मिला है उस कामको इस तरह नहीं भूलना चाहिये। प्रथम तो मनुष्य-शरीरकी प्राप्ति ही कठिन है इसपर द्विजके घर जन्म होना, यज्ञोपवीत-संस्कार हो जाना, माता, पिता, भाई, स्त्री, सन्तान और व्यापारका मनके अनुकूल होना तो बड़े ही भाग्यकी बात है। जरूरतके अनुसार धन और मकान भी तुम्हारे पास हैं। ऐसी स्थितिमें भी यदि आत्माके उद्धारके लिये उपाय नहीं होगा तो फिर कब होगा? इस प्रकार अनुकूल स्थिति सदा नहीं रहेगी, अतएव जबतक मृत्यु दूर है और शरीर आरोग्य है तथा उपर्युक्त अनुकूल परिस्थिति है उतने ही समयमें जो कुछ उत्तम काम करना हो सो बहुत शीघ्र कर लेना चाहिये, जिससे आगे चलकर पश्चात्ताप न करना पड़े। उपर्युक्त पदार्थोंमेंसे दो-चार घट-बढ जायँ तो कोई हानि नहीं परन्तु अब असावधान नहीं रहना चाहिये। संसारमें अब तुम और क्या अनुकूलता चाहते हो? तुम्हें ऐसी किस बातकी कमी है कि जिसकी पूर्तिके बाद तुम अपने कल्याणके लिये चेष्टा करोगे? इस संसारमें एक भगवानके सिवा और कोई भी तुम्हारा नहीं है। माता, पिता, भाई, स्त्री, पुत्र, मकान, रुपये सभी नाशवान् हैं, इनका संग थोड़े ही दिनोंका है। इनमें-से कोई भी पदार्थ तुम्हारे साथ नहीं जायगा। औरोंकी तो बात

ही क्या है तुम्हारा यह शरीर भी यहीं रह जायगा ! हम सब लोगोंका संयोग भी सदा रहनेवाला नहीं है। शरीरका कुछ भी भरोसा नहीं। मेरे रहते भी जब तुमसे अपनी परमगतिके लिये चेष्टा नहीं होती, यदि मेरा शरीर पहले ही छूट गया तब तो तुम्हारे कल्याणके साधनमें और भी ढिलाई होना कोई बड़ी बात नहीं ! तुम नाशवान् क्षणभङ्गुर सांसारिक पदार्थोंके लिये जितनी चेष्टा करते हो उतनी यदि श्रीभगवान्‌की प्राप्तिके लिये करो तो बहुत ही शीघ्र भगवत्-प्राप्ति हो सकती है। श्रीभगवान्‌के समान प्रेमी, दयालु और सर्वशक्तिमान् दूसरा कोई भी नहीं है । फिर तुम किस लिये उस सच्चे प्रेमिकके प्रेमके लिये चेष्टा नहीं करते ? रात-दिन तुच्छ धनके परायण क्यों हो रहे हो ? जब यह शरीर ही तुम्हारे काम नहीं आवेगा तब रुपयोंकी तो बात ही क्या है ? शरीर नाश होनेके बाद केवल (अबका किया हुआ) भजन, ध्यान, सत्संग और शास्त्रोंका अभ्यास ही काम आवेगा और कुछ भी काम नहीं आवेगा। शरीरका नाश अवश्य होगा। इस-को बचानेका कोई भी उपाय नहीं परन्तु शरीरके नाश होनेपर भी आत्माका नाश नहीं होता। इसलिये शरीर नाश होनेके बाद आत्माको परमसुख—परम आनन्द मिले, उसीके लिये रात-दिन चेष्टा करना मनुष्य-जन्मका उत्तम फल है। इसीसे श्रीसच्चिदा-नन्द भगवान्‌की प्राप्ति होती है। मनुष्यका जन्म इसीलिये मिला है, अतएव भगवत्-प्राप्तिके लिये तत्पर होकर चेष्टा करनी चाहिये।

[२३]

आपने लिखा कि वर्तमान समयमें चित्तकी वृत्तियाँ संसारका चिन्तन विशेष करती हैं सो ज्ञात हुआ। आसक्ति-पूर्वक सांसारिक कार्य विशेष देखनेसे ऐसा हुआ करता है। इसलिये सत्संग करना चाहिये। जब आपको सत्संग करनेकी विशेष अभिलाषा ही नहीं तब दूसरा कोई क्या करे? और जब

आपको सांसारिक कार्योंसे अवकाश ही नहीं तब मैं भी क्या उपाय करूँ ?

सुनते हैं कि आपके घरपर सत्संग होता है पर आपका उसमें जाना नहीं होता। आपको विवेकदृष्टिसे विचार करना चाहिये कि क्या सांसारिक कार्योंसे भी सत्संग करना निकृष्ट है ?

आपने लिखा कि जब मैं अपनी भगवद्भजन-ध्यानके साधन-सम्बन्धी वर्तमान दशाकी तरफ विचार करता हूँ, तब चित्त बहुत खिन्न हो जाता है और सांसारिक कार्य भी बहुत न्यून होते हैं सो ज्ञात हुआ। इसीलिये भगवद्भजन-ध्यान करनेके लिये बारंबार लिखना हुआ करता है। परन्तु आप उसपर भी विचार नहीं करते हैं, सो विचारना चाहिये कि समय व्यतीत हो रहा है; भगवान्‌से किये हुए वादेके दिन समीप आ रहे हैं। जो समय बीत चुका वह लौटकर पीछे नहीं आता, अतएव मनुष्य-जन्मको सार्थक करना चाहिये। अर्थात् भगवद्भजन-ध्यानके लिये समय निकालना चाहिये, क्योंकि समय तो एक दिन अवश्यमेव निकालना ही पड़ेगा अर्थात् कालदेवका सन्देश आनेपर एक मिनट भी ठहर नहीं सकोगे। अतएव इस बातको विचारकर आप पहलेसे ही सचेत हो जायँ तो बहुत ही आनन्दकी बात है; नहीं तो फिर पश्चात्ताप करना पड़ेगा।

आपने लिखा कि आपके संगमें जैसा भजन-ध्यान हुआ करना था वैसा अब नहीं होता सो जाना। इस प्रकारसे

लिखना तो आपके प्रेम और श्रद्धाकी बात है। मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ। आप अभीतक भजन-ध्यानके प्रभावको नहीं जानते हैं। यदि भलीभाँति भजन-ध्यानके प्रभावको जान जाते तो आपसे भजन-ध्यान छूट ही नहीं सकता।

आपने लिखा कि तुम्हारे सगसे भजन ध्यान विशेष हुआ करता था। यदि यह बात सत्य है और आप भजन-ध्यानके प्रभावको जानते हैं तो मेरा साथ छूट जाना अर्थात् मेरा वियोग होना आपसे कैसे सहा जाता। अस्तु, मेरे सगकी तो कोई बात नहीं किन्तु श्रीनारायणदेवको किसी कालमें भी नहीं भूलना चाहिये। अर्थात् उनका निरन्तर चिन्तन करना चाहिये एवं ऐसा प्रेम करना चाहिये कि उनका वियोग सहा न जाय अर्थात् उनका वियोग होनेसे शरीरमें प्राण न रह सकें जैसे जलके बिना मछलीके प्राण नहीं रह सकते।

यदि आप सासारिक भोगोंसे श्रीपरमात्मादेवके ध्यानको श्रेष्ठ जानते एवं ध्यानके एक अंशमात्रमें भी त्रिलोकीके राज्यको न्यून मानते तो आपका साधन दिन प्रति दिन तेज होता जाता और निरन्तर ध्यानके लिये अभिलाषा बनी रहती। यदि आपको भगवद्ध्यान एवं सत्सङ्गकी विशेष आवश्यकता प्रतीत होती तो उसके लिये प्रयत्न भी हो जाता। मेरे सगके लिये जो आपने यत्किञ्चित् इच्छा प्रकट की यह तो आपकी कृपा है। परन्तु

बहुत पश्चात्तापकी बात तो यह है कि आपको यत्किञ्चित् ध्यान-जनित आनन्दके प्राप्त होनेपर भी उस आनन्दका तिरस्कार आपके द्वारा कैसे किया गया ? यदि ध्यानमें आनन्द सत्य है तब तो उस आनन्दके लिये प्राणान्तपर्यन्त प्रयत्न क्यों नहीं करते ? और यदि उस ध्यानमें आनन्द नहीं है तो आप उस ध्यानजनित आनन्दकी प्रशंसा किस प्रयोजनसे करते थे ? अस्तु ! जो बात व्यतीत हो गयी उसे जाने दीजिये। भविष्यमें तो सावधान होना चाहिये।

आप कौन-से कार्योंमें अपना अमूल्य समय बिता रहे हैं ? क्या इसी प्रकार आजीवन समय व्यतीत करते रहनेपर आपको इस जन्मके अन्त होनेतक अपना कल्याण होनेकी सम्भावना है ? और यदि कल्याणकी सम्भावना नहीं है तो शीघ्र ही अपने उद्धारके लिये कटिबद्ध होकर बहुत तेज साधनके लिये प्रयत्न करना चाहिये, क्योंकि शरीर तो क्षणभंगुर है, इसलिये शरीरका कुछ विश्वास नहीं है। यदि शीघ्र ही प्राणान्त हो जायगा तो पीछे क्या कर सकेंगे ? आप किसके भरोसे निश्चिन्त हो रहे हैं? आपके पास किसका बल है ? केवल एक नारायणदेवके अतिरिक्त कोई भी आपकी सहायता करनेवाला नहीं है। फिर किसलिये इस असार संसारका आसरा लेकर अपने अमूल्य जीवनको व्यर्थ खो रहे हैं ?

[२४]

संसारमें भगवत्-प्रेमका प्रवाह बहुत तेजीसे चलाना चाहिये। पूर्वकालमें कई बार समय-समयपर प्रेमके प्रवाह बहुत जोरसे बह चुके हैं। वर्त्तमान कालमें भी यद्यपि श्रीनारायणदेवकी तो पूर्ण कृपा हो रही है, तथापि जो कुछ विलम्ब हो रहा है वह केवल अपनी तरफसे ही हो रहा है।

संसारमें भगवद्भावका प्रचार करनेवाले कई मनुष्य तैयार हो जायँ तो बहुत शीघ्र श्रीभगवद्भक्तिका प्रचार हो सकता है, किन्तु विद्वान्, त्यागी और सदाचारी पुरुषोंकी अत्यन्त आवश्यकता है। ऐसे व्यक्ति स्वयं प्रेममें मग्न होकर संसारमें भगवत्-प्रेम, भक्तिका प्रचार करें तो प्रेमका बहुत तेज प्रवाह बह सकता है।

निष्काम प्रेम-भावसे सबकी परम सेवा करनेके सदृश अन्य कोई भी कार्य नहीं है। परम सेवा वास्तवमें उसीको कहते हैं कि जिस सेवाके करनेके पश्चात् कुछ भी कार्य शेष न रहे,

अर्थात् संसारी मनुष्योंको भगवत्-प्रेममें लगाकर उन्हें भगवान्के परम धाममें पहुँचा देनेका नाम ही वास्तवमें परम सेवा है। यद्यपि भूखे, अनाथ, दुःखी, रोगी, असमर्थ तथा भिक्षुक आदिकों-को अन्न, वस्त्र, औषध एवं जिस वस्तुका जिसके पास अभाव हो उस वस्तुके द्वारा उन सबको सुख पहुँचाकर तथा श्रेष्ठ आचरणोंवाले योग्य विद्वान् ब्राह्मणजनोंको धनादि सब पदार्थोंके द्वारा सुख पहुँचाना भी एक प्रकारकी सेवा ही है तथापि परम सेवा तो उसीका नाम हो सकता है कि जिस सेवाके करनेके पश्चात् अन्य कुछ भी करना शेष न रहे। ऐसी सेवाके समान और कोई भी सेवा नहीं हो सकती। इसलिये तुमको भी निष्काम प्रेम-भावसे सब जीवोंकी परम सेवा करनी चाहिये।

अपने तन, मन, धन तथा और भी जो कुछ पदार्थ हों वे यदि सम्पूर्ण सांसारिक जीवोंके उद्धारके लिये, उनकी सेवाके कार्यमें आ जावें तो वे सार्थक हैं, और जो पदार्थ उनकी सेवाके बिना शेष रहें वे निरर्थक हैं। इस प्रकार समझकर उनकी परम सेवा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे सर्व जीवोंसे बहुत प्रेम हो सकता है एवं सब जीवोंके साथ जो निष्काम प्रेम है वह प्रेम भगवान्के साथ ही है, क्योंकि भगवान् ही सर्व जीवोंकी आत्मा है।

[२५]

आपने लिखा कि 'श्रीपरमात्मादेवमें अनन्य प्रेम होकर संसारकी सत्ताका अत्यन्त अभाव होनेके लिये उपयुक्त साधन लिखना चाहिये' सो ज्ञात हुआ। हर समय संसारको स्वप्नवत् अथवा मृगतृष्णाजलके सदृश देखते हुए सर्वत्र भगवान्के सर्वव्यापी स्वरूपका चिन्तन करनेसे संसारकी सत्ताका अभाव होकर सर्वत्र श्रीसच्चिदानन्दघन परमात्मादेव ही प्रतीत हो सकते हैं। भगवान्को सब समय और सर्वत्र चिन्तन करनेसे एवं उनके प्रेमी भक्तोंका संग करनेसे, परमात्मामें प्रेम हो सकता है।

श्रीमद्भगवद्गीताका अर्थसहित अभ्यास करनेसे अथवा परमात्माके पुनीत नामका जप करनेसे तथा भगवान्की आज्ञा-के अनुसार व्यवहार करनेसे उनमें अनन्य प्रेम होकर उनकी प्राप्तिके लिये तीव्र इच्छा होनेसे भगवत्-प्राप्ति अत्यन्त शीघ्र हो सकती है। इस कार्यमें पुरुषार्थ ही प्रधान है।

मन स्थिर होनेके कुछ उपाय पहले लिखे गये थे, अब फिर लिखे जाते हैं—

(१) अभ्यास और वैराग्यसे मनकी वृत्तियाँ स्थिर होती हैं।

(२) हर समय श्वासके द्वारा यत्नपूर्वक विश्वास और प्रेम-सहित प्रणव (ओंकार) का स्मरण करना अभ्यास कहलाता है।

(३) जहाँ मन जाय वहींपर उसे परमात्माके स्वरूपमें लगाना चाहिये।

(४) जिसमें मन जाय उसीमें परमात्माका स्वरूप देखना चाहिये।

(५) जिसमें अधिक प्रीति हो, उसीमें भगवान्‌की भावना करके उसका ध्यान करे।

(६) एकान्त स्थानमें बैठकर ओंकारका जप करता हुआ नासिकाके द्वारा धीरे-धीरे प्राणवायुको बाहर निकालकर सामर्थ्यके अनुसार रोके और फिर उसी प्रकार ॐकारके जपके साथ अपानवायुको पूर्ण करके छोड़ दे। यह सब अभ्यासके रूप हैं।

(७) सुनी और देखी हुई वस्तुओंकी स्फुरणासे चित्तको रहित करके परमात्मामें लगानेका नाम ही वैराग्य है। उपर्युक्त प्रकारसे अभ्यास करने और वैराग्यकी भावना करनेसे मन स्थिर हो सकता है। इनमेंसे जिस साधनमें रुचि हो और अपना मन प्रसन्न रहता हो, मेरे मतसे उसीका अभ्यास करना उत्तम है।
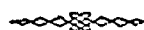
[२७]

श्रीभगवान्‌में प्रेम होनेका उपाय पूछा सो इस बातको वे ही पुरुष अच्छी तरह जान सकते हैं जिनका भगवान्‌में पूर्ण प्रेम है। परन्तु जब तुमने पूछा है तब कुछ लिखना आवश्यक है। उत्तम पुरुषोंका कथन है कि भगवान्‌के प्रभाव और गुणानुवादकी कथाएँ पढने-सुनने और भगवन्नाम-जप करनेसे अन्त करणकी शुद्धि होती है और तब भगवानमें पूर्ण प्रेम हो सकता है। उसके चिन्तनसे, निष्कामभावपूर्वक उसकी बड़ाई और गुणानुवाद कथन करनेसे तथा उसके गुण और प्रभावको जाननेसे उसमें प्रेम होना सम्भव है। प्रेम होनेके बाद तो प्रेमीकी कोई जरा-सी बात सुनते ही रोमाञ्च, अश्रुपातादि प्रेमानन्दके चिह्न प्रत्यक्ष होने लगते है। प्रेमास्पदके पाससे आया हुआ साधारण मनुष्य भी बडा प्रिय लगता है। एक साधारण मनुष्यके साथ प्रेम होनेपर भी जब उसके गुणानुवाद और प्रेमकी बात सुननेसे आनन्द होता है तब प्रेमिक-शिरोमणि भगवान्‌की तो बात ही क्या है? उद्धवकी बात सुनकर गोपिकाओंको जैसा प्रेम हुआ

था वैसा ही प्रेम आज भी हो सकता है। प्रेममें जितनी त्रुटि है उतना ही विलम्ब है। भगवान् तो सब जगह उपस्थित हैं, जबतक तुम्हें विश्वास नहीं होता; तभीतक वे छिप रहे हैं।

तुमने लिखा कि आजकल भजन कम होता है। सो इसमें क्या कारण है? भजन कम होता है तो प्रेम भी कम ही समझना चाहिये, संसार तथा शरीर आदिको अनित्य और क्षणभङ्गुर समझनेपर विलम्ब नहीं हो सकता। भजन अधिक होनेका उपाय दूसरे पत्रमें लिखा है। केवल समयको अमूल्य समझना चाहिये, फिर कुछ भी करनेकी आवश्यकता नहीं रहती। यदि कुछ कर सको तो उस परमप्रिय भगवान्‌के साथ निष्कामभावसे पूर्ण प्रेम होनेके लिये अपना सर्वस्व उसके अर्पण कर देना चाहिये। अपना शरीर और अपने प्राण यदि इस काममें लग जायँ तो अपनेको धन्य मानना चाहिये। सत्सङ्ग करनेपर परमात्मामें मन न लगे, ऐसा हो नहीं सकता; सत्सङ्गसे तो उद्धार हो सकता है। यदि अभी सत्पुरुष नहीं मिले हों तो दूसरी बात है। भजनके लिये समय कम मिलनेकी बात लिखी सो इस कामके लिये तो समय मिलना ही चाहिये। एक दिन सभीको सदाके लिये यहाँसे अवसर ग्रहण करना पड़ेगा। जो पहलेसे समय निकाल लेता है वही सदाके लिये मुक्त होकर सुखी हो जाता है।

[२८]

आपके पिताजीके देहान्तका समाचार और आपके पुत्र-वियोगका समाचार · ··से मिला। आपके पिताजीके देहान्तके समाचारसे इतना विचार नहीं हुआ था परन्तु आपके पुत्रवियोग-का समाचार जानकर तो बड़ा विचार हुआ। पर जिसमें अपना कोई जोर नहीं, उसके लिये क्या किया जाय ? चिन्ता करनेसे भी कोई सुफल नहीं होता। उन लोगोंने लिखा है कि आपको बड़ी चिन्ता और उद्वेग हुआ करता है सो ठीक ही है, परन्तु इस प्रकारकी घटना देखकर भी वैराग्य और उपरामता न हो तो बड़े आश्चर्यकी बात है।

[२९

मैं आपको क्या धीरज बँधाऊँ ? संसारमें लोग दूसरोंको धीरज दिलानेके लिये बड़े-बड़े उपदेश दिया करते हैं, परन्तु अपने लिये वैसा ही अवसर आनेपर जिसके धीरज रहता है, वही सच्चे धैर्यवान् और उन्हींका उपदेश देना सच्चा समझा जाता है। मैं तो केवल मित्रभावसे आपको लिख रहा हूँ। यदि कुछ भूल हो जाय तो प्रेमके कारण सदा ही आपके सामने क्षमाप्रार्थी हूँ।

अवश्य होनेवाली बातें टल नहीं सकतीं। अभिमन्युकी मृत्यु प्रसिद्ध है। और भी ऐसी अनेक घटनाएँ हुई हैं। उत्तम पुरुषोंका तो ऐसा कथन है कि संसारमें चिन्ता करनेयोग्य कुछ भी नहीं है। निम्नलिखित भगवान्‌के उपदेशका यह एक पद भी अच्छी तरह समझ लिया जाय तो फिर चिन्ता नहीं रह सकती—

'अशोच्यानन्वशोचस्त्वम्'*

इसका वास्तविक अर्थ समझ लेनेपर असलमें चिन्ता करनेलायक कुछ भी नहीं रह जाता, फिर यदि कोई चिन्ता रहती है तो वह केवल एक भगवान्‌को प्राप्त करनेकी रहती है।

× × × × × ×

---

* अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥

[२९]

क्रोधकी अधिकताके नाशका उपाय पूछा सो निम्नलिखित साधनोंको काममें लानेसे क्रोधका नाश हो जाता है।

(१) सब जगह एक वासुदेव भगवानका ही दर्शन करे। जब भगवान्‌को छोड़कर दूसरी कोई वस्तु ही नहीं रहेगी, तब क्रोध किसपर होगा ?

(२) यदि सब कुछ नारायण है तब फिर नारायणपर क्रोध कैसे हो ! सबके नारायण-स्वरूप होनेके कारण मैं सबका दास हूँ। उस नारायणकी इच्छाके अनुसार ही सब कुछ होता है और वही प्रभु सब कुछ करता है, तब फिर क्रोध किसपर किया जाय ?

[३१]

पत्र मिला,'सर्वव्यापी' का साधन प्रेमसहित होनेमें त्रुटि लिखी सो कोई चिन्ता नहीं, सगुण भगवान्‌के ध्यानका साधन होना चाहिये। सगुणमें प्रेम होनेपर उनके दर्शन हो जानेसे निर्गुणका भाव तुरन्त ही जाना जा सकता है। प्रज्वलित अग्निका तत्त्व जान लेनेसे व्यापक अग्निका ज्ञान भी तुरन्त ही हो जाता है। यों समझकर 'प्रेमभक्तिप्रकाश' नामक पुस्तकके अनुसार सगुण भगवान्‌के चरणोंका ध्यान करना चाहिये। आपने लिखा

कि 'श्रीपरमात्माके स्वरूपमें मन लय नहीं हुआ' सो इसके लिये भी कोई चिन्ता नहीं। सगुण भगवान्‌का ध्यान ऐसे प्रेमसे करना चाहिये कि जिससे आपको अपने शरीरकी भी सुधि न रहे । चतुर्भुज श्रीविष्णुभगवान् या द्विभुज मुरलीमनोहर श्रीकृष्णभगवान्—इन दोनोंमें आप अपनी रुचिके अनुसार किसी भी स्वरूपका ध्यान कर सकते हैं।

आपने लिखा कि 'बुद्धि अबतक परमात्माके स्वरूपका निश्चय नहीं कर सकी है' वास्तवमें शुद्ध सत् चित् आनन्दघनका स्वरूप बुद्धिके निश्चयमें आनेवाली वस्तु नहीं है । निर्गुणके ध्यानका विषय कठिन है। इसकी अपेक्षा सगुणका ध्यान बहुत सुगम है। फल दोनोंका समान है, अतएव आपको सगुण ध्यान ही करना चाहिये।

आपने लिखा कि 'ऐसी उत्कण्ठा होनी चाहिये कि जिसमें एक नारायणके सिवा और कुछ भी न रहे।' ऐसी उत्कण्ठा गोपियोंकी थी। वे जब श्रीकृष्णभगवान्‌के ध्यानमें मग्न हुआ करतीं, तब उन्हें और कुछ भी नहीं दीखता था। अभ्यास करने-पर आपकी भी वैसी ही दशा हो सकती है।

साधनकी त्रुटिके बारेमें लिखा सो ठीक ही है, परन्तु सत्सङ्ग और जपका अभ्यास बढनेसे साधनकी त्रुटियाँ मिट सकती हैं। सगुण भगवान्‌के मिलनेकी अत्यन्त उत्कण्ठा होनेसे उनके दर्शन भी हो सकते हैं। इसके सिवा और कोई उपाय तो

नहीं दीख पड़ता। भगवत्-प्रेमकी इतनी प्रबलता होनी चाहिये कि जिससे भगवान्‌के मिले बिना रहा न जाय! ऐसी तीव्र उत्कण्ठा होनेपर ही भगवान् मिलते हैं।

माता-पिताकी सेवामें त्रुटि होनेका समाचार विदित हुआ; ऐसा क्यों होता है? माता-पिताकी सेवा तो परम धर्म है, परन्तु यह त्रुटि भी भगवान्‌के भजनसे ही पूरी हो सकती है। निरन्तर भगवद्भजन हुए बिना दोषोंका बिल्कुल नाश होना कठिन है। जो लोग माता-पिताकी सेवा नहीं करते, उनके जीवनको धिक्कार है। माता-पिताको तो किसी भी बातके लिये नाराज नहीं करना चाहिये। भजन, ध्यान, सत्सङ्गके लिये भी उनकी स्वार्थवश आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये। अपना बड़े-से-बड़ा स्वार्थ-का काम भी माता-पिताकी आज्ञाके विरुद्ध नहीं करना चाहिये। यदि कोई ऐसी आज्ञा हो कि जिसके माननेमें माता-पिताके उद्धारमें बाधा पड़ती हो, उन्हें पापका भागी होना पड़ता हो तो उसे भले ही नहीं माने, जैसे भक्तराज प्रह्लादजीने पिताके हितसे उनकी आज्ञा नहीं मानी।

इस भावसे यदि भजन, ध्यान, सत्सङ्गमें बाधा देनेवाली या हिंसा आदिमें लगानेवाली माता-पिताकी आज्ञाको पुत्र न माने तो कोई आपत्ति नहीं, क्योंकि इसमें वह माता-पिताको पापसे बचानेके भावसे उनके हितके लिये ऐसा करता है, अपने स्वार्थके लिये नहीं करता। ऐसी बातोंको छोड़कर संसारके कामोंमें

तो उनकी आज्ञाका भंग कभी नहीं करना चाहिये। धन-सम्पत्तिकी तो बात ही क्या है उनकी आज्ञा पालनेमें यदि प्राण चले जायँ तो भी कोई आपत्ति नहीं, क्योंकि यह शरीर तो उन्हींके रज-वीर्यसे तैयार हुआ है, उन्होंने ही इसका पालन किया है। इस शरीरपर अपना क्या स्वत्व (हक) है। इसपर अपना प्रभुत्व मानना तो नालायकी ही है। संसारमें ऐसे बहुत-से मूर्ख हैं जो स्त्री, पुत्र, धन और आरामके लिये माता पिताके शत्रु बनकर उन्हें कष्ट पहुँचाते हैं, उनकी महान् दुर्गति होती है और उन्हें इन पापोंके कारण भयानक नरकोंमें जाना पड़ता है। यदि शास्त्र सत्य हैं तो ऐसे पुरुषोंका उद्धार होना कठिन है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि भगवान्के भजन, ध्यान और सत्संगसे अत्यन्त नीच प्राणी भी तर जाते हैं, परन्तु अधिक दिनोंकी पुरानी बीमारीमें दवा भी लगातार बहुत दिनोंतक लेनी पड़ती है। इसी प्रकार जिनके जितने अधिक पाप होते हैं उनको भगवान्के दर्शनमें उतना ही अधिक विलम्ब हुआ करता है। पापोंके कारण उनका भगवान्में सहसा विश्वास नहीं होता, इससे पापनाशके लिये उन्हें दीर्घ कालतक भजन करना पड़ता है। अतएव पापोंसे बचकर सर्वथा भगवान्का भजन करना चाहिये।

[३२]

तुम्हारा पत्र मिला, तुमने लिखा कि 'समष्टि (द्रष्टा) का ध्यान प्रायः निरन्तर रहता है, सोना तथा उठना भी इसी स्थितिमें होनेका अनुमान है; किन्तु अचिन्त्यके ध्यानकी स्थिति बराबर एक-सी नहीं रहती। ध्यानकालमें तो अचिन्त्यका ध्यान विलक्षण होता है परन्तु इस विलक्षणताको जाननेवाली वृत्तिका अभाव ध्यानकालके बाद नहीं होता। इससे जाना जाता है कि ध्यानकालमें भी विलक्षणताका अनुभव करनेवाली वृत्ति अप्रत्यक्षरूपसे थी' सो ठीक है। तुमने लिखा कि 'मेरी यह

साधनकी स्थिति आगे मुजब है, गत वर्षके समान तेजीसे नहीं बढ़ी, ठहरी हुई-सी मालूम होती है' सो ठीक है। तुम्हारी स्थितिका बढना रुका नहीं है। स्थिति ठहरी हुई-सी तुम्हें केवल प्रतीत होती है। गत वर्षसे इस वर्ष साधन बढा है परन्तु ठहरा हुआ-सा प्रतीत होनेका कारण एक तो यह है कि साधन बहुत जोरसे बढे बिना साधकको थोड़ी वृद्धिमें उसकी वृद्धि प्रतीत नहीं होती। दूसरे गत वर्ष तो जैसे किसी विद्यार्थीने पहले कभी कौमुदीका पूर्वार्द्ध पढ़ा हो, बीचमें उसकी विस्मृति-सी हो गयी हो और कुछ काल उपरान्त फिरसे पढना आरम्भ करनेपर जैसे वह पूर्वार्द्ध पूर्वमें अध्ययन किया हुआ होनेके कारण बहुत ही शीघ्र हो जाय, परन्तु उत्तरार्द्धके पढनेमें विलम्ब प्रतीत हो ऐसे ही तुम्हारा पूर्वकृत साधन थोड़े ही अभ्याससे प्रकट हो गया था। गड़े हुए अज्ञात धनके मिल जानेके समान तुम्हारे पूर्वप्राप्त परन्तु अज्ञात साधनके अकस्मात् प्रकट हो जानेसे तुम्हें साधन तथा स्थिति बहुत बढता हुई मालूम हुई थी। यही गत वर्ष और इस वर्षकी स्थितिमें अन्तर प्रतीत होनेका कारण है। साधन न तो रुका है और न गत वर्षकी अपेक्षा, जितनी तुम समझते हो उतनी चाल ही कम हुई है। जो कुछ चाल कम हुई है उसका कारण यह है कि गत वर्ष अधिक लाभ मालूम होनेसे हर्षके कारण उत्साह बढ गया था। जिससे साधनमें विशेष तेजी हुई थी, इस वर्ष लाभ कम समझनेसे उतने उत्साहसे चेष्टा नहीं हुई

तथापि साधन तो बढ़ा ही है। परन्तु जैसे किसी सन्निपातके रोगीका सन्निपातदोष मिट जानेपर यदि उसके पेटमें किञ्चित् दर्द रह जाता है तो वह वैद्यसे कहता है कि मेरा पेट दुखता है, मैं अच्छा नहीं हुआ। इसपर वैद्य कहता है कि भाई ! तुम्हारा प्रधान रोग तो मिट गया, मामूली पेट दुखता है, इसके लिये क्या चिन्ता है ? तुम्हारी भी ऐसी ही अवस्था समझनी चाहिये।

तुमने लिखा कि 'अब देर क्यों हो रही है' सो देर इसलिये होती है कि साधक देरको सह रहा है। यदि साधकको प्रभुका वियोग इतना असह्य हो जाय कि उसके प्राण निकलने लगें, तो फिर मिलनेमें तनिक भी विलम्ब नहीं होता। जबतक साधक परमात्माका न मिलना बरदास्त कर रहा है; जबतक भगवान्‌के बिना उसका काम चल रहा है, तबतक भगवान् भी देखते हैं कि इसका काम तो मेरे बिना चल ही रहा है; फिर मुझे ही इतनी क्या शीघ्रता है। जिस दिन भगवान्‌के बिना साधक नहीं रह सकेगा; उस दिन भगवान् भी भक्तके बिना नहीं रह सकेंगे, क्योंकि भगवान् तो परमदयालु हैं। विलम्ब भगवान्‌को चाहनेमें है; पानेमें नहीं। वास्तवमें उसके मिलनेमें देर तुम्हीं कर रहे हो।

तुमने लिखा कि 'मेरा साधन, प्रेम तथा बल पहले भी ऐसा ही था' सो यह बात ठीक नहीं है। साधन, प्रेम और बल पहले भी बढ़ा था और अबतक वह उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। तुम्हें प्रतीत नहीं

होता। जो कुछ बल प्राप्त हो जाता है, निःस्वार्थ और निष्काम-भावकी जो कुछ पूँजी होती है, वह कभी कम तो होती ही नहीं, उत्तरोत्तर बढती है। साधक चाहे तो उसे बहुत बढ़ा सकता है। जैसे घुटाली (सोना गलानेकी घड़िया) का जितना स्थान सोनेसे भर जाता है उतना तो कभी नाश नहीं होता, बाकी खाली स्थानको सोनेसे भर देनेकी आवश्यकता है। (दृष्टान्त) सोना तपानेवाले लोग सोना गलाकर शुद्ध करनेके लिये, असली सोना, इधर-उधर बिखरा हुआ सोना तथा दूसरी धातुओंमें और कूड़े-करकटमें मिला हुआ सोना, उन सब चीजोंके साथ ही घुटालीमें डालकर, उसके साथ सुहागा मिलाकर आगपर चढा देते हैं और आगको फूँकनीसे लगातार फूँकते रहते हैं कि जिससे वह आग कभी बुझती नहीं, प्रत्युत उत्तरोत्तर अधिकतासे प्रज्वलित होती रहती है। अग्निके तापसे घुटालीके अन्दर पड़ा हुआ सोना, सुहागेकी पुटसे तपकर, अपनी स्वाभाविक शुद्धताको प्राप्त होता हुआ, अपने भारीपनके कारण घुटालीके निचले भागमें जमा होता रहता है। उसके ऊपर सोनेमें मिली हुई अन्यान्य धातुएँ छँटकर जमा हो जाती हैं और अत्यन्त हल्का होनेके कारण कूड़ा-कर्कट सबसे ऊपर आ जाता है। इसके बाद अग्निके विशेष तापसे, अन्य धातु और कूड़ा-कर्कट तो जल जाते हैं और केवल तपा हुआ शुद्ध स्वर्ण उस घुटालीके निचले भाग-को रोककर स्थित रह जाता है। घुटालीके खाली स्थानमें

बारंबार ऊपरसे दूसरा सोना डलता रहता है, जिससे धीरे-धीरे सारी घुटाली तपे हुए शुद्ध सोनेसे भर जाती है। कूड़ा-कर्कट और अन्य धातुओंका समूह या तो अन्दर ही जल जाता है या सोनेकी अधिकतासे घुटालीमें कहीं स्थान न पाकर, ऊपर-से तरकर नीचे अग्निमें पड़कर भस्म हो जाता है। सोनेको अन्य धातुओं और कूड़ेसे अलग करनेवाला सुहागा भी अपना काम करके भस्म हो जाता है। अन्तमें उस ऊपरतक भरी हुई घुटालीमें जो रह जाता है, वही असली सोना है। उसीसे दरिद्रताका सदाके लिये नाश हो जाता है। यह एक दृष्टान्त है। इसका दार्ष्टान्त इस प्रकार समझना चाहिये कि घुटाली साधक-का हृदय है। निष्काम भजन, ध्यान, सेवा और सदाचारादि असली सोना है और काम, क्रोध, अज्ञान, संशय, विषयासक्ति, प्रमाद, अभिमान और आलस्य ये आठ प्रकारके दोष दूसरी धातु हैं। संसारके चित्रोंका चिन्तन कूड़ा-कर्कट है। तत्त्वज्ञान अग्नि है, सत्संग उस अग्निको बढ़ानेवाली वायुकी फूँकनी (धौंकनी) है, शास्त्रोंका विचार सुहागा है और परमात्माके अभावका ज्ञान ही उस घुटालीका खाली स्थान है। साधकके हृदयरूपी घुटाली-में निष्काम भजन, सेवा और सदाचारादि स्वर्णके साथ काम-क्रोधादि दोषरूपी अन्य धातु और संसारके चित्ररूपी कूड़ा-कर्कट भी पड़ते जाते हैं, परन्तु सत्संगरूपी वायुकी फूँकनीसे बढ़े हुए तत्त्वज्ञानरूपी अग्निके तापसे और शास्त्रोंके विचाररूपी

सुहागेकी सहायतासे, हृदयरूपी घुटालीका निचला भाग निष्काम भजन, ध्यान, सेवा और सदाचारादिरूपी शुद्ध तपे हुए स्वर्णमें भर जाता है। काम-क्रोधादि दोषरूपी अन्यान्य धातु और संसारके चित्रचिन्तनरूपी कूड़ा-कर्कट जल जाते हैं। शास्त्रविचाररूपी सुहागा भी स्वर्णको शुद्ध करके स्वयं लुप्त हो जाता है। तब केवल निष्काम भजन, ध्यान, सेवा और सदाचारादिरूपी शुद्ध सोना ही अवशेष रह जाता है। इस तरह साधकके हृदयका जितना-जितना स्थान निष्काम भजनादिसे भर जाता है, उसका तो कभी नाश नहीं होता। परन्तु उस हृदयरूपी घुटालीका जितना स्थान परमात्माके अभावज्ञानरूपी शून्यतासे खाली पड़ा है वह जबतक नहीं भर जाता, तबतक अज्ञानरूपी दरिद्रताका सर्वथा नाश नहीं होता। जैसे कलकत्ता जानेवाले किसी यात्रीके पास यदि किरायेके रुपयोंमेंसे कुछ भी कम हो तो उसे खास कलकत्तेका टिकट नहीं मिलता। जितने पैसे कम होंगे उतना ही इधरका टिकट मिलेगा। अपने गन्तव्य स्थानतकके टिकटके लिये तो भाड़ेके पूरे पैसे चाहिये। इसी प्रकार साधकका हृदय भी जहाँतक पूरा नहीं भर जाता वहाँतक उसे भगवत्-प्राप्ति नहीं हो सकती। जितना स्थान खाली रहता है उतना ही वह परमात्मासे इधर रह जाता है। हृदयरूपी घुटालीको ऊपरतक भर देनेके लिये बारंबार स्वर्ण डालना चाहिये और उसे तपाकर शुद्ध करनेके लिये तत्त्वज्ञानरूपी अग्नि और उस अग्निको प्रबल रखनेके लिये

सत्संगरूपी वायुकी फूँकनी तथा काम-क्रोधादिरूपी धातुओं और संसारके चित्ररूपी कूड़े-कर्कटको अलग करनेके लिये शास्त्र-विचाररूपी सुहागा डालते रहना चाहिये। ये सभी काम बराबर होते रहने चाहिये। इन सबमें निष्काम भजन, ध्यान, सेवा और सदाचारादिरूपी स्वर्ण और सत्संगरूपी वायुकी फूँकनीको प्रधान समझना चाहिये। केवल स्वर्ण ही न हो और सब बातें हों तो उससे दारिद्र्य दूर हो नहीं सकता। स्वर्णके हुए बिना तो वायुकी फूँकनीरूपी सत्संग भी क्या कर सकता है? औषध लिये बिना वैद्यकी सलाहसे क्या हो सकता है? इसलिये निष्काम भजन, ध्यान, सेवा और सदाचारादिकी तो नितान्त आवश्यकता है परन्तु सत्संगरूपी वायुकी फूँकनी न हो, तो तत्त्वज्ञानरूपी अग्निके शान्त होनेका भय रहता है। इसलिये सत्संग भी प्रधान ही है। यद्यपि यह अग्नि एक बार जलनेपर सहजमें बुझती नहीं, कभी बुझती है तो सारी दूसरी चीजोंको जलाकर केवल शुद्ध स्वर्णके रह जानेपर ही बुझती है और न सहजमें यह सत्संगरूपी वायुकी फूँकनी ही रुकती है। साधारण अग्नि तो केवल सोनेको तपाकर शुद्ध ही करती है; परन्तु यह तत्त्वज्ञानाग्नि तो स्वर्णकी उत्तरोत्तर वृद्धिमें सहायक होती है। इस प्रकार वह हृदयरूपी घुटाली तपे हुए शुद्ध स्वर्णसे परिपूर्ण हो जाती है। निष्काम भजन, ध्यान, सेवा और सदाचारादिसे हृदयका भर जाना ही भगवत्-प्राप्ति है। जैसे ग्रासों-

के भरनेसे पेट भर जाता है इसी प्रकार इस स्वर्णके भर जानेमें ही भगवत्-प्राप्ति है, फिर खाली स्थान किञ्चित् भी नहीं रह जाता। एक सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही परिपूर्ण हो जाता है अतएव उपर्युक्त दृष्टान्तके अनुसार निरन्तर पूर्णरूपसे तत्पर रहकर, भगवत्प्राप्तिके लिये यत्न करना चाहिये।

तुमने लिखा कि 'साधनकी ,उन्नतिमें मेरा बल और प्रेम कुछ भी नहीं था, जो कुछ हुआ सो प्रभुके अद्भुत अनुग्रहसे ही हुआ, सो यों ही मानना उत्तम है। विशेष अंशमें बात भी यही है। भगवत्-प्राप्तिमें पुरुषार्थ प्रधान है। पुरुषार्थके होनेमें भगवान्की कृपा प्रधान है और भगवान्की कृपा सब जीवोंपर निरन्तर है, लाभ उसीको होता है जो उसको मानता है। जैसे किसीके पास पारस पत्थर है एवं पारसके स्पर्शसे चाहे जितना लोहा सोना बनाया जा सकता है और दरिद्रता दूर की जा सकती है परन्तु यदि कोई पारसको पारस ही न माने तो इसमें पारसका क्या दोष है? पारसको पारस समझनेसे ही लाभ है, यही दशा भगवत्-कृपाकी है। इसलिये भगवत्की कृपा माननेमें ही परमलाभ है। सत्संगसे भगवान्का प्रभाव जाना जाता है। भगवान्का प्रभाव जाननेसे भगवत्-कृपाका अनुभव होता है, भगवत्कृपासे भगवत्प्राप्तिके लिये पुरुषार्थ बढ़ता है और पुरुषार्थसे भगवत्प्राप्ति होती है।

तुमने लिखा कि 'नित्याभियुक्त हुए बिना योगक्षेमका वहन

प्रस्तुत हैं। परन्तु प्रेम लेनेवालेकी तत्परता असली होनी चाहिये। जब परमात्माके लिये लज्जा, भय, धर्म, नीति, योग्यता, अयोग्यता, संकोच, धन, मान, अपमान, परिवार और पुत्रादि सबको भूलकर, केवल उसे ही पानेके लिये अत्यन्त उत्कण्ठा होती है, तब उसके प्राप्त होनेमें विलम्ब नहीं होता। उपर्युक्त प्रायः सारी ही बातोंका त्याग जानकर नहीं करना चाहिये। जान-कर त्यागनेसे तो उलटा दोष आता है। ऐसा करना तो प्रमाद और दम्भ है। परन्तु प्रेमकी विह्वलतामें किसी प्रकारका ध्यान ही न रहनेसे जब इनका स्वतः ही त्याग हो जाता है तभी वह प्रेम-का त्याग कहलाता है। जैसे श्रीविदुरजीकी स्त्री प्रेमकी प्रगाढ़ता-में योग्यता-अयोग्यताको भूल गयी थी। जैसे परम भक्तिमती गोपियाँ भगवान्‌के प्रेममें विह्वल होकर घर, द्वार, पति, पुत्र, लोक, लज्जा, मान, अपमान, धर्म और भयादि सबको त्यागकर परमात्मा कृष्णके परायण हो गयी थीं। गोपियोंने जान-बूझकर ऐसा नहीं किया था। भगवान्‌में उनका आत्यन्तिक प्रेम ही इस-में एक कारण था। इसीलिये भगवान्‌ने कहा है कि मेरा प्रभाव केवल गोपियाँ ही जानती हैं। इस भावके जितने अंशमें त्रुटि है, उतने ही अंशमें प्रेमदानमें विलम्ब समझना चाहिये। प्रेम जो चाहता है उसे ही मिलता है। बिना चाहे जबरदस्ती प्रेमदान देनेका भगवान्‌का नियम नहीं है। यदि ऐसा होता तो अबतक सभी जीव मुक्त हो गये होते। भगवान्‌के अवतार भी ऐसा नहीं

करते। यदि करते तो उनके सामने ही उनके समयके सभी लोगोंको प्राप्ति हो गयी होती। क्योंकि वे यों तो कह ही नहीं सकते कि मुझमें जबरदस्ती प्रेमदान करनेका सामर्थ्य नहीं है। परन्तु ऐसे गले पड़कर मुक्त करनेका उनका कानून नहीं है। भक्तोंमें अवश्य ऐसी विशेषता होती है और भक्त लोग अपने सामर्थ्यके अनुसार चेष्टा करते ही हैं। यह कानून तो उन लोगोंपर लागू होता है, जो या तो जीवोंके उद्धारके लिये भगवान्से खुली परवानगी (पूरा अधिकार) पा चुके हों या जिनके केवल दर्शन, स्पर्श, चिन्तन और भाषणसे ही जीवोंका कल्याण होता हो। जैसे भक्त प्रह्लादजी और बङ्गालके श्रीचैतन्यमहाप्रभु आदि हुए। इसीलिये भगवान्से भी भक्तोंकी विशेषता है। तुलसीदासजीने रामायणमें कहा है—

मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। रामते अधिक राम कर दासा॥
राम सिंधु घन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा॥

अथवा कारक पुरुषोंपर यह कानून लागू होता है। कारक पुरुष उनको कहते हैं, जो क्रममुक्तिद्वारा भगवान्के परमधाममें पहुँच जानेके बाद, भगवान्की आज्ञासे केवल जीवोंके उद्धारार्थ ही परमधामसे जगत्में आते हैं, जैसे व्यास, वशिष्ठादि। अतएव भगवान्का जबरदस्ती प्रेमदान करनेका कानून नहीं है।

* * * * * *

[३३]

भजन, ध्यान कम होनेमें तुमने जो हेतु दिखाया सो ठीक ही अनुमान किया गया । परन्तु दृढ़ पुरुषार्थके अभ्याससे सञ्चित कर्म और आलस्य भी नाश हो जाते हैं । इसलिये सामर्थ्यके अनुसार पुरुषार्थ करनेकी और भी विशेष चेष्टा करनी चाहिये । तुमने लिखा कि भजन, ध्यान और सत्सङ्गकी चेष्टा जितनी होनी चाहिये उतनी नहीं होती, सो ठीक है, इसके होनेमें पुरुषार्थ ही प्रधान है । तीव्र पुरुषार्थ करते-करते ज्यों-ज्यों सञ्चित पाप नाश होते हैं त्यों-त्यों अन्तःकरण भी शुद्ध होता जाता है । अन्तःकरण शुद्ध होनेसे दृढ वैराग्य होकर शीघ्र ही भगवत्प्राप्ति हो जाती है ।

भगवान्‌के प्रभाव, स्वभाव, गुण और लक्षणके विषयमें मैं क्या लिखूँ ? यद्यपि इस विषयमें किसीका भी सामर्थ्य नहीं है, तो भी अपनी समझके अनुसार, संक्षेपसे अपना ही भाव लिखा जाता है ।

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥ (गीता ४ । ६)

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥ (गीता ४ । ८)

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ (गीता १८ । ६६)

इत्यादि श्लोकोंमें उनके प्रभावका विषय लिखा है।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ (गीता ४।११)
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥ (गीता ५।२९)
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥ (गीता १०।१०)
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥ (गीता १०।११)

इत्यादि श्लोकोंमें उनके स्वभावका विषय लिखा है और गुण तो अपार हैं।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥ (मनु० ६।९२)
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ॥ (गीता १६।३)
सत्यं दमस्तपः शौचं संतोषो ह्रीः क्षमार्जवम्।
ज्ञानं शमो दया ध्यानमेष धर्मः सनातनः ॥

इत्यादि श्लोकोंका भाव सनातन धर्मका स्वरूप है और यही सद्‌गुण माने गये हैं। परमात्मामें ये गुण स्वाभाविक होते हैं। इसी प्रकार और भी अपार गुण हैं और वे सब भगवान्‌में परिपूर्ण हैं।

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥ (गीता ८।९)

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥ (गीता १२ । ३)

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥ (गीता १३ । १५)

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात् कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने ॥

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥

इत्यादि श्लोकोंमें भगवान्के साकार तथा निराकार स्वरूपके लक्षण कहे गये हैं।

इसी प्रकार और भी जहाँतक समझमें आवे, प्रभाव अर्थात् उनका सामर्थ्य, स्वभाव अर्थात् उनका आशय, सद्गुण और उनके स्वरूपको स्मरण रखते हुए, नामका जप किया जाय तो बहुत ही लाभ हो सकता है। तुमने लिखा कि उनका सामर्थ्य अर्थात् प्रभाव जाने बिना, नाम-जपके समय उनका स्वरूप कैसे याद किया जावे, इसीलिये इस विषयमें कुछ लिखा गया है।

[३४]

संसारमें वैराग्य और भगवान्में प्रेम बहुत शीघ्र हो, इस विषयमें उपाय पूछा, सो भगवान्के गुणानुवाद, प्रभाव, रहस्य और प्रेमकी बातें पढने सुननेसे तथा नामका जप और स्वरूपका ध्यान करनेसे, बहुत शीघ्र भगवान्में प्रेम और संसारमें वैराग्य हो सकता है।

× × × × के ध्यानके विषयमें पूछा, सो मेरे अनुमानसे कार्यकालमें गीता अ० १४। १९ के अनुसार द्रष्टा साक्षीका ध्यान होता है और एकान्त समयमें संसारका अभाव और सच्चिदानन्दका भाव तथा अचिन्त्यके ध्यानकी विशेष चेष्टा

[११३

रहती है। किसी समयमें चिन्तन होता है तो केवल आनन्दघन-का ही होता है। आनन्दघनको छोड़कर और स्फुरणा कमती होती है। व्युत्थान-अवस्थामें संसारकी स्फुरणा तथा संकल्प होता है, वह संसारका अभाव रखते हुए ही होता है। इस तरहकी अवस्था उनकी बातोंसे अनुमान की जाती है।

मानसिक जपके विषयमें समाचार ज्ञात हुए। जिस जपमें मन विशेष रहे, वही मानसिक जप कहलाता है। श्वासद्वारा होनेवाले जपसे नाडीद्वारा जपमें, नाडीद्वारा होनेवालेकी अपेक्षा केवल मनसे नामाक्षरोंके चिन्तन होनेमें और इसकी अपेक्षा भी केवल अर्थमात्रका ज्ञान रहनेमें मन अधिक लगा हुआ समझा जाता है। जितना-जितना मन अधिक लगता है, उतना-उतना ही साधन तेज समझा जाता है, परन्तु श्वास तथा नाडीद्वारा होनेवाला जप भी कम नहीं समझना चाहिये। इस तरहके नाम-जपकी संख्या अधिक होनेसे परिणाममें उत्तम है। उपर्युक्त विधियोंमें जो आपको सुगम प्रतीत हो उसी तरह कर सकते हैं। चाहे जिस विधिसे भी हो, वास्तवमें निरन्तर होनेकी विशेष आवश्यकता है। जो साधन निरन्तर विशेष कालतक और आदरपूर्वक होता है, वही महत्त्वका समझा जाता है।

आपने पूछा कि 'परवैराग्य' किस तरह हो, सो उपर्युक्त विधिके अनुसार भगवन्नाम-जप, उसके स्वरूप-चिन्तन, सत्सङ्ग और तीव्र अभ्याससे हो सकता है। 'परवैराग्य' का स्वरूप

'परम पुरुष परमात्माका ज्ञान' और उसका फल 'परम पुरुष परमात्माकी प्राप्ति' है। आपने अपने पुरुषार्थकी त्रुटि बतलायी सो नहीं रहनी चाहिये, क्योंकि इस विषयमें पुरुषार्थ ही प्रधान है और पुरुषार्थहीनका उपाय परमात्मा भी नहीं करते, यदि करते तो आजतक कर ही देते।

आपने लिखा, मेरा सारा समय निरन्तर साधनमें ही कैसे व्यतीत हो, सो ठीक है। ससारमें वैराग्य और भगवान्में प्रेम रहनेसे ऐसा हो सकता है। जबतक ऐसा नहीं होता तबतक ध्यान अमृतरूप नहीं भासता। ध्यान अमृतरूप प्रतीत होनेके बाद तो ध्यानका तार टूट ही कैसे सकता है। सर्वदा भगवत्-स्वरूपका ऐसा निश्चय रहनेसे ही परमेश्वरके स्वरूपमें निरन्तर स्थिति रह सकती है। जितना जितना भगवान्के अस्तित्वका विश्वास होता जायगा, उतनी उतनी ही उसे भगवत् प्राप्ति समझनी चाहिये। वैराग्यकी वृद्धि होनेसे ही सब समय एकरस स्थिति रह सकती है, इसके समान और कोई उपाय देखनेमे नहीं आता। इसलिये भजन और सत्सङ्गके तीव्र अभ्यासकी ही चेष्टा करनी चाहिये।

आपने लिखा, स्वामी श्रीस्वयज्योतिजी महाराजका दर्शन करनेसे वैराग्य उत्पन्न होता हुआ प्रतीत होता है, परन्तु सब समय एक तरहकी अवस्था नहीं मालूम होती, सो ठीक है।

अन्तःकरण बिल्कुल शुद्ध होनेसे—केवल सत्त्वप्रधान अन्तः-करण होनेसे—एकरस अवस्था रह सकती है।

अन्तःकरणमें वैराग्य उत्पन्न होनेके लिये, कोई विशेष उपाय पूछा, सो नाम-जपका तीव्र अभ्यास करना चाहिये और भक्ति, वैराग्यके शास्त्रोंका अभ्यास तथा सत्पुरुषोंका संग करना चाहिये।

पहले एक वार आपने पूछा था कि आसक्तिके बिना जब संसारकी बात सुनी जाती है तब बीच-बीचमें बोलना पड़ता है, फिर मनमें व्यर्थ बातोंकी फुरणा हो जाती है, इसके लिये कोई उपाय करना चाहिये, सो बात तो यह है कि जिसको व्यर्थ बातोंमें वैराग्य होता है, वह तो उन्हें सुनता ही नहीं, यदि कोई सुनी जाती है तो वह उसके मनमें ठहरती नहीं, इससे इसका उपाय करनेकी कोई आवश्यकता नहीं।

सच्चिदानन्द भगवान् ही सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है। उस आनन्दघनके अस्तित्वका ज्ञान भी उस आनन्दमय भगवान्को ही है। भगवान् अपने स्वरूपमें ही सदा स्थित हैं, इस तरह किसी समय प्रत्यक्षकी ज्यों प्रतीत होता है, 'मैं' का अभाव प्रतीत होता है, 'मैं' ढूँढ़नेपर भी नहीं मिलता, पर सर्वदा एक तरहका भाव नहीं रहता। इसके लिये आपने उपाय पूछा, सो 'मैं' का नाश ही उपाय है। उपर्युक्त आनन्दघनकी स्थितिके समय 'मैं' क्षीण तथा हल्का होता है। 'मैं' सर्वव्यापी साक्षी चेतनमें छिपा हुआ है। यदि ढूँढ़नेपर भी

'मैं' न मिले, तो उस समय ढूँढनेवाले ज्ञातामें भी 'मैं' व्यापक समझा जाता है। 'मैं' का अत्यन्त अभाव हो जानेके बाद इसको ढूँढनेका संकल्प भी नहीं होता। फिर 'मैं' को किस प्रयोजनके लिये कौन ढूँढ़े? इस पत्रका कोई समाचार आपके समझमें न आवे तो मिलनेपर पूछना चाहिये।

आपने लिखा कि, ऋषिकेशके साधनके विषयमें पूछा, सो यत्किञ्चित् साधन है, वह आपके सामने ही है। यदि कुछ लिखने योग्य साधन होता तो लिखा जाता सो आपका लिखना ठीक है परन्तु आपने लिखा कि 'जो कुछ साधन है सो आपके सामने ही है,' सो कैसे लिखा? मैं अन्तर्यामी थोड़े ही हूँ?

तेज ध्यान होनेके कारण, ×××× का जन्म सफल हुआ लिखा, सो ठीक ही है। 'सफल' शब्दसे भगवत्प्राप्तिकी कामना मालूम होती है। पर भगवत्प्राप्तिरूप फलकी इच्छा दोष-युक्त नहीं है, इससे 'सफल' शब्द मैं भी लिख दिया करता हूँ।

आपने पूछा कि, ××××× की कोठरीमें और नदीके किनारे जैसा ध्यान होता था, उससे श्री ×× ××× ध्यान तेज लिखा, सो उनके ध्यानमें केवल निरन्तरता ही विशेष है या और भी कुछ विलक्षणता है? सो निरन्तरता तो विशेष है ही पर कुछ विलक्षणता भी है, वह यत्किञ्चित् पत्रद्वारा लिखनेका विचार है और विशेष-रूपसे मिलनेपर बताना ठीक है।

जो सच्चिदानन्दघनका ध्यान है, सो ही सच्चिदानन्द भग-

वान्‌का स्वरूप है। ध्यान जिसका किया जाता है सो अमृत-रूप है। उस समय ध्यान ही साक्षात् अमृतमय हो जाता है तथा केवल अर्थमात्र ही रह जाता है और ध्याता, ध्यान, ध्येय-रूप त्रिपुटी है ऐसा कहना नहीं बनता; अमृतका ज्ञान, अमृत-स्वरूप परमात्माको ही है, फिर अमृतमयकी इच्छा किसको हो?

साधनकी चेष्टाके विषयमें आपने लिखा कि, मेरे पुरुषार्थ-से तो कुछ हो नहीं सकता, वह परमात्मा ही सामर्थ्यवान् है, अब भी जो कुछ साधन बनता है, उसमें मेरा क्या पुरुषार्थ है? सो ठीक है, इसी तरह मानना चाहिये। पर पुरुषार्थ—चेष्टा करके साधन—करते रहना चाहिये और इसमें भी प्रभुकी ही प्रेरणा माननी चाहिये, जिससे कभी अहन्ता न आवे। यदि प्रभु बिना पुरुषार्थ किये ही दया करके अपनी कृपासे उद्धार कर देते, तो दया तो उनकी सदासे ही है, पर बिना चेष्टा किये, परम पुरुषार्थ किये, किसीको भगवत्प्राप्ति नहीं होती, भगवत्प्राप्ति अपने पुरुषार्थ-से ही होती है और वह पुरुषार्थ भगवत्प्रेरणासे ही होता है। भगवत्‌की कृपा सबके ऊपर है, परन्तु कृपा माननेसे ही कृपा फलीभूत होती है। श्वासद्वारा भजन होता है, उसमें मन रहता है, पर मानसिक अर्थात् जो केवल मनसे ही चिन्तन किया जाय, वही जप मानसिक समझा जाता है। श्वासद्वारा होनेवाला जप भी बहुत उत्तम है, उससे भी वासनाका बहुत नाश होता है, इससे अन्तमें, परिणाममें यह भी बहुत उत्तम है।

[३५]

हर समय शरीर, प्राण, मन, बुद्धि और इन्द्रियोंमेंसे 'मै' को हटानेकी चेष्टा करते रहना चाहिये। बराबर खयाल रखना चाहिये कि शरीरादि मैं नहीं हूँ, मै इनसे पृथक् हूँ, मै इनका द्रष्टा हूँ।

श्रीसच्चिदानन्दघन परमात्मा ही तेरा स्वरूप है, उसीमें 'मैं' भाव करना चाहिये। व्यवहार-कालमें तथा बोलनेके समय भी शरीरमें 'मैं' भाव नहीं होने देना चाहिये। खयाल रखना चाहिये कि शरीरमें 'मै' भाव आने ही न पावे। इसके साधनमें यह युक्ति है, द्रष्टा बनकर शरीरको देखनेसे शरीरसे 'मैं' भाव हटता है। बोलनेके समय खयाल रखकर बीच बीचमें ठहरता रहे तो इसका स्मरण बना रहता है।

स्त्री, पुत्र, धन और सम्पूर्ण विषय भोगोंमें सुख नहीं है। यदि वास्तवमे इनमें सुख हो तो इनके रहते हुए दुःख होना ही न चाहिये। पर जिन पदार्थोंके रहते भी दुःख होता है, उनमे सुख नहीं है यह सिद्ध है। सुख तो विचार, शान्ति और सन्तोपमें ही है।

[३६]

आपने पूछा कि 'लोगोंका उद्धार बहुत ही जल्दी हो जाय तथा सब भगवान्‌के प्रेमी भक्त बन जायँ, इसके लिये हमें तत्परतासे क्या पुरुषार्थ करना चाहिये ?' मैं इसका उपाय क्या बतलाऊँ ? इसका उपाय तो जो प्रह्लादकी भाँति भगवान्‌के परम भक्त हैं, वे ही जानते हैं। जिसके ध्यानसे, स्पर्शसे और जिसकी चर्चासे, जीव भगवान्‌का परम भक्त बनकर उद्धारको प्राप्त हो जाता है, वही निष्कामी, ज्ञानी और भक्त-शिरोमणि है; परन्तु आपने पूछा है, इसलिये अपनी बुद्धिके अनुसार उत्तर लिखना योग्य समझकर लिखा जाता है।

आपने अपना जो उद्देश्य दिखाया, मेरी समझमें वह उद्देश्य ही उत्तम उपाय है। भक्तोंका यही उद्देश्य होना चाहिये। इस असार संसारमें भगवन्नाम-जप ही प्रेम, भक्तिकी वृद्धिके लिये मेरी समझसे श्रेष्ठ उपाय है, मनुष्यजन्म पाकर जो भगवद्भक्तिकी चेष्टा नहीं करते, उन्हें धिक्कार है। लोगोंको भगवत्‌के भजन, ध्यान, कीर्तनमें लगाना ही परम कर्तव्य है, यही जीवनका उद्देश्य समझना चाहिये। जो इसी कामके लिये अपना जीवन समझता है, वही धन्यवादका पात्र है। जो अपना तन, मन, धन, सर्वस्व संसारके मनुष्योंको भगवद्भक्तिमें लगानेके लिये ही अर्पित समझता है, उसे अर्पण करना नहीं पड़ता, उसके लिये सर्वस्व भगवान्‌का है और वह उसीके काममें लग रहा है। लोगोंको भगवद्भक्तिमें लगानेके लिये, वह अपने शरीरकी खाल खिंचवानेमें भी सकोच नहीं करता। उसका जीवन लोगोंके उद्धारके लिये ही है। वह भक्तिके प्रचारके लिये प्रसन्नतापूर्वक अपने प्राणोंतककी आहुति दे डालता है।

[३७]

तुम्हारी स्त्री तथा घरके लोग सब तुमसे विशेष प्रसन्न नहीं हैं, इसलिये तुम्हें उनके साथ प्रेमका वर्ताव करना चाहिये। मेरा स्वभाव तो सबके साथ प्रेमके वर्तावका है। घरवालोंको जैसे आराम मिले और उनका मन राजी रहे, वैसे ही न्याययुक्त वर्ताव करना मैं उत्तम समझता हूँ, शरीरको तो घर और संसारके समस्त मनुष्योंकी सेवामें लगा देना चाहिये।

सत्संगकी विशेष चेष्टा रखनी चाहिये। सत्संगके प्रताप-से नीच भी सुधर जाता है। भगवत्-भक्ति एक ऐसी उत्तम वस्तु है कि इसके समान और कुछ भी नहीं है।

जो भगवान्‌का गुणानुवाद करते रहते हैं, वे ही धन्यवाद-के योग्य हैं। भगवत्कृपासे ही भगवत्-चर्चा होती है।

[३८]
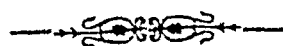
आपने लिखा कि 'जो पहलेसे ही मोहजालमें फँसा हुआ है, वह स्वत कैसे निकल सकता है, इसलिये चाहे जैसे हो, आपको ही निकालना चाहिये।' सो निकालनेवाले श्रीपरमात्मा-देव हैं। निम्नलिखित श्लोकके अनुसार उस परमेश्वरकी शरण लेनी चाहिये, इससे बढकर और कोई उपाय नहीं है।

तमेव शरण गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परा शान्ति स्थान प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥ (गी० १८।६२)

'हे भारत! सब प्रकारसे उस परमेश्वरकी ही अनन्य-शरणको प्राप्त हो, परमात्माकी कृपासे ही परम शान्तिको और सनातन परमधामको प्राप्त होगा।'

इस शरणके लिये सत्सग करना चाहिये। सत्सगका मर्म जाननेके बाद एक पल भी सत्सग छूटनेसे बड़ी हानि जान पड़ती है, सत्सगके समान और कुछ नहीं दीखता। ससारके विषय भोग अच्छे नहीं लगते। सत्संग करनेके समय बड़ा आनन्द होता है, अश्रुपात भी होते हैं और बारबार रोमाञ्च होता है। जबतक ऐसी अवस्था न हो, तबतक समझना चाहिय कि वास्तविक सत्सग नहीं हुआ और न उसका मर्म ही जाना।

[३९]

तुम्हारे घरके लोग, तुमसे प्रेम करें इसकी चेष्टा करना ही मैं ठीक समझता हूँ। आसक्ति बिना भी दूकानका काम बहुत अच्छी तरहसे होनेका उपाय आगे लिखा ही था। उसी तरह करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। तुमने पूछा कि 'भगवान्‌के भजनमें किस तरह प्रेम हो', सो भगवान्‌के भजनका प्रभाव जाननेसे तथा उनमें श्रद्धा होनेसे प्रेम होता है। भगवान्‌में जिनकी श्रद्धा है, उनका संग करनेसे श्रद्धा बढ़ती है। भजन करनेवालोंका संग करनेसे भजन, ध्यान अधिक होता है और प्रेमी भक्तोंका संग करनेसे तथा उनकी लिखी बातोंको पढ़नेसे, भगवान्‌में तथा उनके भजनमें प्रेम हो सकता है। किसी वस्तुकी आवश्यकता हो, तो वह वस्तु जिसके पास हो उसका तथा उस वस्तुका संग करनेसे ही, उस वस्तुमें प्रेम तथा उसकी प्राप्ति हो सकती है।

यदि मनुष्य प्रेम और उत्कट इच्छासे किसीका संग करता है, तो तदनुसार उसका भाव अवश्य ही हो जाता है और भजन होते हुए ही सांसारिक काम जितना हो सके उतना करनेकी चेष्टा अवश्य रखनी चाहिये।
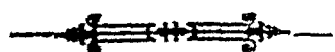
[४०]

आपने लिखा कि 'श्रीपरमात्मा तथा श्रीगुरुदेवकी बड़ाई करे, वही धन्यवाद देने योग्य है, तथा श्रीपरमात्मा और श्री-गुरुदेवके वचनोंमें श्रद्धा होनेके बाद कैसा ही पापी क्यों न हो, उसका कल्याण हो जाता है', सो आपका लिखना बहुत ही ठीक है। श्रद्धा होनेके बाद तो कुछ भी बड़ी बात नहीं है। श्रीपरमात्मा-देवमें तथा गुरुदेवमें श्रद्धा (विश्वास) होनेके बाद तो वह और भी बहुत-से मनुष्योंका कल्याण करने योग्य बन जाता है।

आपने लिखा कि 'परमात्मामें श्रद्धा होकर कल्याण हो, ऐसा उपाय होना चाहिये', सो ठीक है, उपाय होना कुछ भी बड़ी बात नहीं है। यदि उपाय करना हो तो करना चाहिये। भगवान्‌की तरफसे तो कुछ विलम्ब है ही नहीं। जिस मनुष्यको श्रीपरमात्मादेवके मिलनेका उपाय करना होगा, चाहे जिस तरह हो वह तो उनके ही परायण हो जायगा, फिर वह भगवान्‌के समान कुछ भी नहीं समझेगा। ऐसा होनेपर उसके लिये उपाय कुछ भी कठिन नहीं है।

आपने लिखा कि 'परमात्मादेवमें मेरी श्रद्धा होनी चाहिये', सो ठीक है, यदि श्रद्धा चाहें तो सर्वस्व भगवान्के अर्पण करनेसे हो सकती है और नहीं चाहें, तब इस तरह लिखना बनता नहीं।

आपने एक स्थानमें लिखा कि 'मैं तो श्रीगुरुदेवकी सभामें छोटे-से-छोटा साधन करनेवाला हूँ', फिर दूसरे स्थानमें लिखा कि 'मेरा साधन कुछ भी नहीं है', सो इन दो प्रकारकी बातोंका क्या मतलब है तथा श्रीगुरुदेवकी सभा कौन-सी है, कि जिसमें आप छोटे-से-छोटे साधनवाले हैं? साधन तो छोटा होता है, वह भी उत्तम ही है। छोटे साधनसे ही बड़ा साधन हुआ करता है।

आपने लिखा कि 'मेरे भजन-साधनके भरोसे तो उद्धार होना कठिन है। यदि कोई नीच-से-नीच भी महान् पुरुषोंके पास जाय, तो वे उसे स्वीकार कर लेते हैं, इसी प्रकारसे यदि हो तो मेरा भी उद्धार हो सकता है', सो ठीक है। महात्मा तो दयालु होते हैं, उनके तो दर्शनसे भी उद्धार तथा कल्याण होना चाहिये, फिर पास जानेके बाद तो बात ही क्या है? सच्चे महात्मा तो प्राप्त होने ही कठिन हैं, मिल जायँ तो बड़े आनन्दकी बात है। महात्माकी शरण लेनेके बाद तो भजन-ध्यान होनेमें कुछ भी कठिनता नहीं रहती और स्वभाव भी स्वतः ही सुधर जाता है।

[४१]
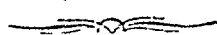
आपका ध्यान कैसा होता है? सच्चिदानन्दघनमें हर समय इस प्रकारसे ध्यान रखना चाहिये। 'मैं' का बिल्कुल अभाव होना चाहिये और अपने शरीरको तथा संसारको आनन्दमें कल्पित देखते हुए उसे मिथ्या समझकर उसका संकल्प ही छोड़ देना चाहिये। शरीरकी सुधि नहीं रहनी चाहिये।

जब मै था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहि।
कबिरा नगरी एकमें, राजा दो न समाहि॥

'जो कुछ है एक सच्चिदानन्दघन ही है' ऐसा ध्यान छोड़कर जो मनुष्य मिथ्या संसारकी वस्तुओंके चिन्तनमें अपने मनको लगाता है वह महा मूर्ख है। मिथ्या नाशवान् वस्तुओंका किसलिये स्मरण करना चाहिये?

जो पूर्ण आनन्द हृदयमें समाता नहीं, उसका हर समय ध्यान करनेसे ध्याता स्वयं भी आनन्दस्वरूप हो जाता है। 'मैं' भावका बिल्कुल नाश हो जानेपर एक सच्चिदानन्दघन ही रह जाता है।

मैं जाना मैं और था, मै तो भया अब सोय।
'मैं' 'तैं' दोनों मिट गई, रही कहनकी दोय॥

[४२]

आपके क्या बीमारी है सो लिखना चाहिये। आपने लिखा कि 'श्रीपरमात्मादेव दस-बीस दिनोंमें आराम कर देंगे' सो भगवान्‌से इस तुच्छ शरीरके लिये प्रार्थना नहीं करनी चाहिये। क्योंकि ऐसा करनेसे भक्ति सकाम हो जाती है। भगवान्‌से माँगना ही चाहें तो उनके दर्शन माँगने चाहिये अथवा ऐसी वस्तु माँगनी चाहिये कि जिसके मिल जानेपर फिर कभी कुछ भी माँगना न पड़े। शरीर, स्त्री, पुत्र और रुपयोंके लिये इतने बड़े मालिकसे अर्ज़ नहीं करनी चाहिये। तुच्छ मिथ्या शरीर और भोग तो यहीं रह जायँगे। महात्मा लोग कहते हैं 'मर भले ही जायँ पर अपने लिये भगवान्‌से कभी कुछ भी माँगें नहीं!'

मर जाऊँ माँगू नहीं, अपने तनके काज।
परमारथके कारणे, मोहि न आवै लाज॥

परमार्थ अर्थात् परमेश्वरके लिये माँगनेमें कोई हर्ज नहीं। अपने शरीरके लिये उस स्वामीसे कुछ कहना बहुत छोटी बात है।

नामका जप होनेसे ध्यान भी अपने आप ही हो जाता है। राम-नामकी पूँजी असली धन है, उसको मिथ्या काममें नहीं लगाना चाहिये। कहा भी है—

कबिरा सब जग निरधना, धनवंता नहि कोय।
धनवंता सो जानिये, (जाके) रामनाम धन होय॥

राम-नाम अमूल्य रत्न है। उसे शरीरको आराम देनेवाले संसारके भोगरूपी पत्थरोंसे नहीं फोड़ना चाहिये। भगवान्‌से मिथ्या वस्तु नहीं माँगनी चाहिये।

[४३]

हर समय नाम-जपके साथ 'मैं नहीं, मैं नहीं' का अभ्यास करना चाहिये। शरीरसे 'मैं' भाव निकालना चाहिये। नहीं तो आगे चलकर मुश्किल है।

'मैं' 'मै' वड़ी वलाय है, सको तो निकसो भाग।
कब लग राखो रामजी, रुई लपेटी आग॥

शरीर मिथ्या एवं नाशवान् है। यह रूईमें लपेटी हुई आग कवतक रहेगी? इसे शरीरसे जल्दी वाहर निकालनी चाहिये। मिथ्या शरीरमें जो 'मैं' भाव आरोपित हो गया है, उसे निकालनेमें देर न करनी चाहिये। संसारमें वहुत-से मनुष्य 'मैं'

'मेरे' भावकी डोरीसे बँध रहे है, पर जिसके भगवान्‌का आधार है उसको कोई बन्धन नहीं है।

मोर तोरकी जेवरी, गल बाँधी ससार।
दास कबीरा क्यों बँधे, (जाके) रामनाम आधार॥

बन्धन हो तो वह भी छूट जाता है। अत उस परमात्माका आश्रय इस प्रकार लेना चाहिये कि 'जो कुछ भी है, भगवान् है' उस मालिकको प्राणोंसे भी बढकर मानना चाहिये।

उसका गुणानुवाद तथा प्रभाव सुननेसे प्रेम बढता है। प्रभाव सत्संगसे जाना जाता है इसलिये सत्संग करना चाहिये। शास्त्रका अभ्यास करना चाहिये। हरिकथासे हरिमें भाव बढता है। भावसे मिलनेकी इच्छा बढ़ती है। इच्छा बढ़नेपर चेष्टासे भजन ज्यादा होता है। भजनसे निष्काम प्रेम होकर भगवान्‌के दर्शन होते हैं। महात्मा तथा भक्त इस तरह कहा करते हैं।

तुमने लिखा कि 'ससारकी आसक्तिके कारण तुमसे विछोह हुआ है' सो आसक्ति तो खराब ही है। पर विछोहका कारण मिलनेकी टान कम होना भी है।

भाई! नामका जप, सत्सग, भगवान्‌का ध्यान तथा भावसहित स्मरण, निष्काम भावसे करके प्रेम बढाना चाहिये। फिर मिलना भले ही कम हो। प्रेमास्पदमें प्रेम चाहिये, प्रेम ही प्रधान है। प्रेम न हो तो मिलनेका विशेष मूल्य नहीं।

[४४]

संसारमें रहकर शुद्ध हृदयसे काम किया जाय तो बहुत अच्छी तरह काम चल सकता है। चतुर मनुष्योंके साथ चतुराईकी बातें करनेमें आपत्ति नहीं। आपत्ति है छल-कपट करनेमें, परन्तु हृदय शुद्ध हुए बिना व्यवहार शुद्ध होना बहुत कठिन है। भजन-ध्यान करते हुए संसारका काम करनेसे पापका नाश होनेपर, जब हृदय शुद्ध हो जाय तब कोई बाधा नहीं होगी। जब धनका लोभ ही छूट जायगा तब उसके लिये कपटकी आवश्यकता क्यों होगी?

स्वार्थका त्याग करनेसे व्यवहार शुद्ध हो सकता है, परन्तु व्यवहार (व्यापार) अधिक करना ठीक नहीं। साधन बहुत

तेज हो जानेपर तो अधिक काम करनेमें कुछ हानि नहीं, परन्तु पहले विना शक्तिके अधिक काम नहीं करना चाहिये। भजन, ध्यान करते हुए जितना काम हो सके, उतना ही करना उचित है।

आपने लिखा कि 'श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्‌ने अर्जुनको तथा योगवाशिष्ठमें श्रीवशिष्ठजीने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको गृहस्थाश्रम छोडनेका भाव दिखलाया है', सो यह बात ठीक नहीं है। यदि गृहस्थ छोडनेको कहा जाता तो अर्जुन और श्रीरामचन्द्रजी उसे छोड़ देते। अर्जुन तो गृहस्थ छोड़नेको तैयार ही था। भगवान्‌ने उपदेश देकर अर्जुनको युद्धमें प्रवृत्त किया। भगवान् कहते हैं—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च। (गीता ८।७)

'तू सब समयमें निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर।'

अन्यान्य स्थलोंमें भी भगवान्‌ने इसी आशयके वचन कहे हैं कि 'निष्काम भावसे कर्म करता हुआ संसारमें विचर', 'मेरा ध्यान करता हुआ,मन बुद्धि मुझमें रखता हुआ स्वार्थको त्यागकर संसारमें कर्तव्य कर्म कर, मेरी कृपासे तेरा उद्धार हो जायगा।' गृहस्थ छोडनेकी बात तो कहीं नहीं कही।

आपने लिखा कि 'मेरे कुसंग नहीं है' सो यह तो मुझे भी मालूम है कि आपके बहुत बुरा संग नहीं है, परन्तु संसार,

संसारके पदार्थ;—भोग—धन और सांसारिक सुख देनेवाली वस्तुओंका जो आप प्रेमसे चिन्तन करते हैं सो सब कुसंग ही है। एक श्रीनारायणदेवके भजन, ध्यान और सत्संगको छोड़कर और सभी कुसंग है।

आपने लिखा कि 'सुग्रीव, उद्धव और अर्जुनके मित्र बनकर भगवान्‌ने उनपर बहुत ही कृपा की। उनके समान और किसीपर भी भगवान्‌की ऐसी कृपा नहीं हुई, इतना होनेपर भी सुग्रीव, उद्धव और अर्जुनको ज्ञान नहीं हुआ।' आपका यह समझना ग़लत है। मैं तो यही मानता हूँ कि उन लोगोंको अवश्य ज्ञान हो गया था। उनके अपने उद्धार होनेमें तो बात ही कौन-सी है, बल्कि भगवान्‌के भक्त और सखाओंकी कृपा भी जिसपर होती है, उसको भी ज्ञान प्राप्त हो जाता है और वह इस असार संसार-सागरसे तर जाता है।

भगवन्नाम-जप, प्रेमाभक्ति तथा भगवत्-कृपासे मनुष्यका उद्धार हो जाता है। भगवान् स्वयं ही उसे बुद्धियोग दे देते हैं। भगवान् कहते हैं—

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥ (गीता १०। ९-१०)

'वे निरन्तर मेरेमें मन लगानेवाले, मेरेमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन सदा ही मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभावको जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही सन्तुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेवमें ही निरन्तर रमण करते हैं। उन निरन्तर मेरे ध्यानमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ कि जिससे वे मेरेको ही प्राप्त होते हैं।'

आपने लिखा कि 'कौन-सी कृपासे उद्धार हो सकता है' सो नीचे लिखे श्लोकोंके अनुसार भगवान्की शरण ग्रहण करनी चाहिये।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।

तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥(गीता १८।६२)

'हे भारत! सब प्रकारसे उस परमेश्वरकी ही अनन्य शरणको प्राप्त हो, उस परमात्माकी कृपासे ही परम शान्ति और सनातन परमधामको प्राप्त होगा।'

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥(गीता १८।६६)

'सब धर्मोंको अर्थात् सम्पूर्ण कर्मोंके आश्रयको त्यागकर केवल एक मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्माकी ही अनन्य शरणको प्राप्त हो, मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।'

भगवान्‌का सब समय चिन्तन करनेसे ही इस तरह शरण हुआ जाता है। और इस तरह वह भगवत्कृपासे ज्ञान प्राप्तकर निश्चय ही परमपदको प्राप्त कर लेता है। भगवान्‌की इसी कृपासे भगवान् मिलते हैं और जीवका उद्धार होता है। इन सब बातोंको खूब अच्छी तरह समझना चाहिये।

आपने पूछा कि 'मुझको संसारमें रहकर क्या करना चाहिये ?' इसका उत्तर ऊपर लिखा ही है। भगवान्‌के गुणानुवाद, प्रभाव और प्रेमकी बातें पढ़नी और सुननी चाहिये। हर समय भगवान्‌के नामका जप और स्वरूपका ध्यान करते हुए ही आसक्ति और स्वार्थ छोड़कर संसारका काम करना चाहिये। आसक्ति न छूटे तो कोई चिन्ता नहीं, सब कुछ भगवान्‌का समझकर जैसे गुमाश्ता (नौकर) मालिकके लिये काम करता है, वैसे ही अपना स्वार्थ छोड़कर संसारके सम्पूर्ण काम भगवान्‌के लिये ही करने चाहिये।

आपने लिखा कि 'उपदेशका सदाव्रत मुझे भी यात्री समझकर देना चाहिये।' सो उपदेश देनेवाला तो मैं कौन हूँ, पर आपकी आज्ञा मानकर मेरी समझके अनुसार शास्त्रोंकी कुछ बातें लिख दी हैं।

आपने लिखा कि 'संसारमें तो दुःख ही है' सो यही बात ठीक है। संसारमें कुछ भी सुख नहीं है। जो कुछ सुख दीखता

है, वह भी मिथ्या ही भासता है, अन्तमें तो दुःख-ही-दुःख है।

महाराज दशरथजी और वसुदेवजीके विषयमें समाचार पढ़े। उन लोगोंको धन्य है जिनके घरोंमें भगवान्‌ने अवतार लिया। देखनेमें उन लोगोंको बहुत सांसारिक दुःख हुए, परन्तु अन्तमें उनका संसारसे उद्धार हो गया। वे सदाके लिये आनन्दघन परमात्माको प्राप्त हो गये। मेरी समझसे उनका पुनर्जन्म नहीं होगा। मुझे इनके उद्धारमें कोई शङ्का नहीं है। उनको सांसारिक क्लेश देखनेमें आये सो ठीक है, पहलेके किये हुए कुछ पाप भी बाकी होंगे, जिन्हें भोगकर वे शुद्ध हो गये और भगवान्‌के उनके घर अवतार लेनेसे उनका उद्धार हो गया। वे पुण्यात्मा भी थे। पुण्य-पाप सभीके रहते हैं, किसीके पाप अधिक रहते हैं तो किसीके पुण्य अधिक!

श्रीदशरथजी और श्रीवसुदेवजी पहले जन्ममें भगवान्‌के बड़े भक्त थे। सम्भव है किसी पूर्वके जन्ममें कुछ पाप बने हों, उन्हीं सब पापोंको भोगकर तथा भक्तिके प्रतापसे पापोंका नाश होनेपर अन्तमें उनका इस संसार-सागरसे उद्धार हो गया।

आपने पूछा कि 'संसारमें जीवको सुख तो देखनेमें नहीं आता फिर भी यह जीव संसारमें भटकता क्यों फिरता है?' सो यह मूर्खता अर्थात् अज्ञानके कारण भटकता है। इसने भूलसे संसारमें सुख मान रक्खा है, मृगतृष्णाके जलकी तरह संसारमें

मिथ्या सुख भासता है; इसीसे यह मूर्खतामें फँसकर मृगकी तरह भटकता फिरता है।

आपने पूछा कि 'इस जीवको सुख कैसे हो?' सो भगवान्‌की भक्तिसे सुख होता है। क्योंकि भक्तिमें ही सुख है। भक्तिसे भगवान् मिलते हैं जिससे सदाके लिये पूर्ण आनन्द हो जाता है। गीता अध्याय ६ श्लोक २१ से ३२ तकका अर्थ पढ़ना चाहिये। उसके अनुसार भजन, ध्यान करनेसे अपार सुखकी प्राप्ति हो सकती है। फिर किसी समय भी दुःख नहीं हो सकता। ऐसा आनन्द प्राप्त होता है जिसके समान न तो कोई दूसरा आनन्द है और न उसका कभी नाश होता है।

आपने पूछा कि 'संसारमें रहकर बर्ताव किस तरह करना चाहिये' सो ठीक है। अपनेसे बड़ोंमें श्रद्धा, समानमें मित्रता, छोटोंमें पालन करनेका भाव रखते हुए सबकी सेवा करनी चाहिये।

[४५]

मुझे मालूम हुआ है कि हिन्दू-मुसल्मानके मामलेको लेकर आप बहुत उद्विग्न हैं और बड़ी चिन्ता करते हैं। मेरी समझसे यह बहुत लज्जाकी बात है। परोपकारमें जीवन लग जाना बहुत ही उत्तम है, इसमें तो आनन्द मनाना चाहिये। लोकसेवा करनेवाले मनुष्योंपर बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ आया करती हैं, इसके लिये वे कभी शोक नहीं करते? इसमें घबरानेकी बात ही कौन-सी है? यदि आपने लोकहितके लिये न्यायपूर्वक चेष्टा की है और उसके लिये आपपर आपत्ति आयी है तो उसके लिये आपको आनन्द मानना चाहिये।

यदि आप निर्दोष हैं तो यह विश्वास करना चाहिये कि आपका नुकसान नहीं हो सकता, अगर दोषी हैं तो दण्ड भोगनेके लिये भी आनन्दसे तैयार रहना चाहिये और आप यदि यह समझते हैं कि बिना ही दोष आपपर लोकहित करते यह आपत्ति आयी है, तो आपको एक वीरकी भाँति प्रसन्नतासे जेल जाना चाहिये अथवा प्रमाणोंसे अपनेको निर्दोष साबित करना चाहिये। रोना, चिन्ता करना और छिपना तो कायरताके लक्षण हैं, कायरता बहुत बुरी चीज है। गीता अध्याय २ श्लोक २, ३* का अर्थ समझकर कायरताका त्याग करना चाहिये। यहाँ वीरता ही मुक्तिमें हेतु है, कायरतापूर्ण जीवन तो मृत्युके समान है, शूरतामें प्राणत्याग करना लाभजनक और धर्म है। गीता अध्याय

---

* कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥

हे अर्जुन! तुमको इस विषमस्थलमें यह अज्ञान किस हेतुसे प्राप्त हुआ? क्योंकि यह न तो श्रेष्ठ पुरुषोंसे आचरण किया गया है, न स्वर्गको देनेवाला है, न कीर्तिको करनेवाला है। इसलिये, हे अर्जुन! नपुंसकताको मत प्राप्त हो, यह तेरेमें योग्य नहीं है, हे परंतप! तुच्छ हृदयकी दुर्बलताको त्यागकर युद्धके लिये खड़ा हो।

२ श्लोक ३७, ३८* और अ० ३ श्लोक ३५† का अर्थ देखिये। आप जब यहाँके मामूली वारण्टसे इतने घबराते हैं, तब उस बड़े राजा यमराजका वारण्ट मिलनेपर तो न मालूम आपकी क्या दशा होगी? आपको तो उस वारण्टसे भी नहीं डरना

---

* हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः॥
सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥

या तो मरकर स्वर्गको प्राप्त होगा अथवा जीतकर पृथिवीको भोगेगा, इससे हे अर्जुन! युद्धके लिये निश्चयवाला होकर खड़ा हो। यदि तुझे स्वर्ग तथा राज्यकी इच्छा न हो तो भी सुख दुःख, लाभ हानि और जय-पराजयको समान समझकर उसके उपरान्त युद्धके लिये तैयार हो, इस प्रकार युद्ध करनेसे तू पापको नहीं प्राप्त होगा।

† श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥

अच्छी प्रकार आचरण किये हुए दूसरेके धर्मसे गुणरहित भी अपना धर्म अति उत्तम है, अपने धर्ममें मरना भी कल्याणकारक है और दूसरेका धर्म भयको देनेवाला है।

चाहिये, शरीर तो एक दिन जाना ही है, फिर किसी अच्छे कामको करते-करते चला जाय तो बहुत अच्छी बात है। कैदकी तो बात ही क्या है, परोपकार करते फाँसीपर लटकना पड़े तो भी बहुत आनन्दकी बात है। कायरतासे कुछ दिन जी भी लेंगे तो क्या होगा ?

क्या आप इसमें अपना अपमान समझते हैं ? अपमान तो कायरतामें है वीरतामें नहीं, धर्मके त्यागमें है धर्मकी रक्षामें नहीं। और कुछ न बन पड़े तो जो कुछ मालिककी मर्जीसे होता हो, उसमें प्रसन्न तो रहना ही चाहिये। विचारसे हो या हठसे, किसी तरह भी शोक, चिन्ता और दुःखको हटाकर, हर समय हर अवस्थामें आनन्दमग्न रहना चाहिये। भजन, ध्यानके लिये निरन्तर प्रयत्न करते हुए, इस बातपर विश्वास रखना चाहिये कि जो कुछ होता है, सब भगवान्की दयासे होता है और उसीमें मंगल है।*

* किसी मामलेमें फँसे हुए एक चिन्तातुर सज्जनको यह पत्र कई वर्षों पूर्व लिखा गया था।

[४६]

आपने लिखा कि 'इन दिनोंमें भजन, ध्यान और सत्सङ्ग मुझसे नहीं होता' सो भजन, ध्यानादि करनेके लिये प्रयत्न करना चाहिये। अन्यथा बड़ी कठिन समस्या है।

द्रव्योपार्जनके लिये व्यापार करनेमें तो आपसे परिश्रम हो जाता है, पर अपने सच्चे कल्याणके लिये प्रयत्न नहीं होता, इससे मालूम होता है कि आप भजन, ध्यान और सत्सङ्गको धनके समान भी नहीं मानते। आपको विवेकपूर्वक विचार करना चाहिये कि यह नश्वर द्रव्य, क्या मृत्युके समय आपकी सहायता कर सकेगा? क्या द्रव्यसे आपको भगवत् सम्बन्धी आनन्द प्राप्त हो सकेगा? ऐसा कभी नहीं होगा, क्योंकि वहाँ कोई रिश्वत लेनेवाला नहीं है। परलोककी बात तो दूर रही धनसे इस लोकमें भी वास्तविक सुख नहीं मिल सकता। संसारमें मूर्खोंको ही सुख प्रतीत होता है, विवेकसम्पन्न पुरुषोंके लिये तो सांसारिक सुख दुःखरूप ही है। महर्षि पतञ्जलि कहते हैं—

परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः। (योगदर्शन २। १५)

'परिणामदुःख, तापदुःख, संस्कारदुःख तथा दुःखोंसे

मिश्रित होने और गुण-वृत्ति-विरोध होनेसे, विवेकी पुरुषोंकी दृष्टिमें समस्त विषयसुख भी दुःख ही हैं।'

संसारमें यदि वास्तविक सुख होता तो ऋषि-मुनिगण सांसारिक सुखोंको त्यागकर क्यों वनमें जाकर तपस्या करते ? आपको यदि अपने कल्याणकी इच्छा हो तो निष्काम भावसे प्रेमपूर्वक श्रीपरमात्माके पुनीत नामका निरन्तर जप करनेके लिये प्रयत्न करना चाहिये। उस वास्तविक सच्चे निष्कामी परम प्यारे परमात्माके प्रेममें कलङ्क नहीं लगाना चाहिये।

जो व्यक्ति इस असार संसारके तुच्छ, अनित्य और क्षणभंगुर भोगोंमें फँसकर भगवद्भजन, ध्यान, सत्सङ्ग छोड़ देता है, वह महामूर्ख है। अन्तमें उसकी बड़ी दुर्दशा होती है। अतएव आपको ऐसा अधोगतिमें ले जानेवाला कार्य भूल-चूक-कर भी नहीं करना चाहिये।

आपके कल्याणोपयोगी कार्योंमें जो व्यक्ति आपकी सहायता करता है, उसे ही अपना परम मित्र जानकर शेष सबको बनावटी मित्र समझना चाहिये। विशेष लिखनेमें क्या है, यदि आपको अपने कल्याणकी इच्छा हो तो कुछ भी विचार न कर शीघ्र चेतना चाहिये और सांसारिक मोह-जालमें न फँसकर, तेज साधनके लिये तैयार हो जाना चाहिये।

[४७]

श्रीपरमात्माका भजन, ध्यान करते हुए ही सांसारिक कार्योंकी चेष्टा करनी चाहिये । अन्य किसी काममें चाहे भूल हो जाय, परन्तु परमात्माके भजन, ध्यानमें भूल न करनी चाहिये। भक्त प्रह्लादके आदर्शको सामने रखकर चेष्टा करनी चाहिये, यदि इसमें माता, पिता या भाई आदि बाधा दें, तो उनकी खुशामद और सेवा करके उन्हें प्रसन्न करना चाहिये। सेवा तो सभी जीवोंकी करना उत्तम है और कर्तव्य है।

संसारके भोगोंमें फँसना नहीं चाहिये। सांसारिक भोग-विलास, ऐश-आराम और स्वाद-शौकीनी आदि सभी विषय क्षणभंगुर और अनित्य हैं, धोखा देकर डुबानेवाले हैं और लालच देकर गलेमें फाँसी लगानेवाले हैं, यों समझकर भूलकर भी इन विषयोंसे प्रेम न करे। इनमें एक बार कुछ समयतक सुख-सा प्रतीत होता है, परन्तु अन्तमें वह नाश हो जाता है, अतएव इनसे डरते रहना चाहिये। इस तरहके साधनसे चित्तमें प्रसन्नता और विषयोंसे वैराग्य हो सकता है और पीछे संसारका कोई भोग अच्छा नहीं लगता।

[४८]

भगवान्‌से प्रेम करनेकी इच्छा हो तो भगवान्‌को ही सबसे उत्तम समझना चाहिये। संसारमें श्रीनारायणके समान दयालु तथा सुहृद् और कोई भी नहीं है। न उसके समान कोई प्रेमी ही है। वह नीचसे भी प्रेम करता है, किसीसे भी घृणा नहीं करता। यदि कोई मनुष्य अपनी नीचताकी ओर देखकर भगवान्‌को न भजे तब तो कोई उपाय नहीं, परन्तु भगवान्‌की ओरसे तो सबके लिये 'खुला आर्डर' है। चाहे कोई कितना भी नीच क्यों न हो यदि निरन्तर भजन करे तो उसे भी भजनके प्रतापसे परमानन्दकी प्राप्ति हो जाती है। भगवान्‌के ऐसे प्रभाव-को कोई न जाने तो इसमें भगवान्‌का कोई दोष नहीं।
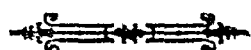
[४९]

आपने लिखा कि 'ध्यान नहीं लगता, अतएव मेरे लिये ध्यान लगानेकी चेष्टा करनी चाहिये' सो मैं चेष्टा करनेवाला कौन हूँ ? भजन और सत्संग बहुत अधिक होनेसे ध्यान आप ही लग सकता है। मैं क्या चेष्टा करूँ ? इसमें तो आपकी चेष्टा ही विशेष काम कर सकती है। जहाँ सत्सग होता हो वहाँ चाहे जैसे भी कामको छोड़कर जाना चाहिये और ध्यानकी बातें सुनकर, उसी समय उसी तरह ध्यान लगानेकी चेष्टा करनी चाहिये। ध्यानवाले पुरुषोंके समीप बैठकर ध्यान लगाना चाहिये, ध्यानमें जो विघ्न हों सो उन भगवान्‌के भक्तोंको कहना चाहिये। फिर उनके बतलाये अनुसार साधनकी चेष्टा करनी चाहिये। यों करनेसे ध्यान लग सकता है।

[५०]

आपके साथ जो कोई ईर्ष्या करे, उससे भी आपको प्रेम करना चाहिये। जो कोई आपका बुरा करे, उसका भी आपको उपकार करना चाहिये, और वैर रखनेवालेका भला करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। स्वार्थ और मान-बड़ाईको त्यागकर नम्रभावसे सभीके साथ प्रेम करना कर्त्तव्य है। मान-बड़ाई आदिकी कामनाको जीतनेवाला ही दुर्लभ है, कहा है—

कञ्चन तजना सहज है, सहज तियाका नेह।
मान बड़ाई ईर्षा, दुर्लभ तजना एह॥

क्रोध करें तो अपने अवगुणोंपर करें, दूसरेके अवगुणोंपर ध्यान न देना चाहिये। वास्तवमें भजन और सत्संगके होनेसे, ये दोष आपसे ही छूट जाते हैं। सब प्रकारसे निष्काम होनेपर याने कामका नाश हो जानेके बाद, क्रोध-वैर या मान-बड़ाईको स्थान नहीं रहता, जहाँतक ये बने रहते हैं, वहाँतक निष्काम हुआ नहीं समझा जाता।

[५१]

ध्यान तथा वैराग्यकी साधारण बातें लिखी जाती हैं विशेष बातें प्रत्यक्ष मिलनेपर पूछ ली जायँ तो ठीक है।

जो कुछ भास रहा है सो सब मायामात्र है। मायाके अधीश्वर भगवान्‌को इसका बाजीगर समझकर, बाजीगरके जमूरेकी तरह संसारकी वस्तुओंको लेकर खेल करना चाहिये। किसी समय भी इस कल्पित संसारकी सत्ता मानना उचित नहीं। इस खेलको जो मनुष्य सत्य समझ लेता है वह ठगा जाता है। भगवान् उसे मूर्ख समझते हैं और यह समझते हैं कि इसने हमारा प्रभाव नहीं जाना। जो भगवान्‌के मर्मको जान लेता है, वह कभी मोहित नहीं होता। संसार कोई वस्तु नहीं है, वास्तवमें जो कुछ है सो श्रीसच्चिदानन्दघन ही है, इस प्रकारका ध्यान ही वैराग्ययुक्त ध्यान कहलाता है। एक नारायणदेवके सिवा और कुछ भी नहीं है। जो भास रहा है सो है ही नहीं। और जो है सो भासता नहीं, क्योंकि भगवान्‌का गुणातीत स्वरूप इन्द्रियोंका विषय नहीं है। सगुण स्वरूपका भास होना सम्भव है, परन्तु उसके दर्शन होनेपर निर्गुणका मर्म जाननेमें कुछ भी विलम्ब नहीं होता।

चित्र

छोटे-बड़े रंगीन और सादे चित्र

श्रीकृष्ण, श्रीराम, श्रीविष्णु, श्रीशिव, श्रीशक्ति और संत भक्तोंके दिव्यदर्शन

जिसको देखकर हमें भगवान् याद आवें, वह वस्तु हमारे लिये संग्रहणीय है। किसी भी उपायसे हमें भगवान् सदा स्मरण होते रहें तो हमारा धन्य भाग हो। भक्तों और भगवान्के स्वरूप एवं उनकी मधुर मोहिनी लीलाओंके सुन्दर दृश्य-चित्र हमारे सामने रहें तो उन्हें देखकर थोड़ी देरके लिये हमारा मन भगवत्-स्मरणमें लग जाता है और हम सांसारिक पाप-तापोंको भूल जाते हैं।

ये सुन्दर चित्र किसी अंशमें इस उद्देश्यको पूर्ण कर सकते हैं। इनका संग्रहकर प्रेमसे जहाँ आपकी दृष्टि नित्य पड़ती हो, वहाँ घरमें, बैठकमें और मन्दिरोंमें लगाइये एवं चित्रोंके बहाने भगवान्को यादकर अपने मन-प्राणको प्रफुल्लित कीजिये। भगवान्की मोहिनी मूर्तिका ध्यान कीजिये।

कागज-साइज १५×२० इञ्चके बड़े चित्र, मूल्य सुनहरी ~)॥ रंगीन ~) मात्र।

कागजका साइज १० इञ्च चौड़ा, १५ इञ्च लम्बा, सुनहरी चित्रका)॥, रंगीन चित्रका मूल्य)।-, यह छोटे ब्लाकोंसे ही बेल (बार्डर) लगाकर बड़े कागजोंपर छापे गये हैं।

कागजका साइज ७॥×१० इञ्च, सुनहरीका मूल्य)।-, रंगीनका मूल्य)।, सादेका १) सैकड़ा। सब चित्र असली आर्टपेपरपर छपे है।

इनके सिवा ५×७॥ के रंगीन चित्रोंका दाम १) सैकड़ा है। चित्र बहुत सस्ते, सुन्दर और दर्शनीय मिलते हैं।

चित्रोंके दाम बिल्कुल नेट रक्खे हुए हैं।

पुस्तकों तथा चित्रोंकी विशेष जानकारीके लिये सूचीपत्र मुफ्त मँगवाइये।

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर